।। ओउम्।।

प्रस्तावना

(क) संस्कृत नाटकों की परम्परा –

नाट्य–सिद्धान्त के उपलब्ध ग्रन्थों में नाट्यशास्त्र में परिरक्षित भारतीय परम्परा नाटक की दैवी उत्पति और ईश्वरीय वेदों से उसके घनिष्ठ सम्बन्ध का दावा करती है। सभी प्रकार के दुःखों से अनभिज्ञ स्वर्ण–युग को इस प्रकार के मनोरंजन की कोई आवश्यकता नहीं थी। शोक (जो कला के लिए उतना ही आवश्यक है जितना की हर्ष) असंकल्पनीय था। इस नये साहित्य– रूप का निर्माण रजत–युग के लिए अवशिष्ट रहा, जब देवता जगत्पिता ब्रह्मा के पास गये एवं उनसे ऐसी वस्तु के निर्माण की प्रार्थना की जो कानों तथा नेत्रों को समान रूप से आनन्द दे और जो चतुष्टयी के विसदृश एक पंचम वेद हो जो केवल द्विजातियों की ही ईर्ष्य सम्पत्ति न हो, अपितु शूद्र भी जिसके अंशभागी हो सके। ब्रह्मा ने उनका निवेदन सुना और ऐसे वेद रूप को देने की अभिकल्पना की जिसमें पुरुषार्थ निरूपण, इतिहास तथा शिक्षा से समन्वित हो। अपने कार्य सम्पादन के लिए उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य–तत्त्व, सामदेव से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस ग्रहण किया। तब उन्होंने देव वास्तुशिल्पी विश्वकर्मा को प्रेक्षागृह के निर्माण की आज्ञा दी। उस प्रेक्षागृह में इस प्रकार सर्जित कला के प्रयोग के लिए उन्होंने भरत मुनि को अनुदेश दिया। देवताओं ने नयी रचना को सहर्ष स्वीकार किया। शिव ने रौद्र–व्यंजक तांडव–नृत्य का योगदान किया और उनकी अर्धांगिनी पार्वती ने सुकुमार एवं श्रृंगारिक लास्य का। नाट्य मात्र के प्रभाव के लिए अनिवार्य चार नाट्य–वृत्तियों के आविष्कार का दायित्व विष्णु ने निभाया। इस दिव्य वेद को नाट्यशास्त्र के अवर तथा छिन्न रूप में भूतल पर स्थानान्तरित करने का कार्य भरत को करना पड़ा।

यह व्याख्यान दो कारणों से महत्त्वपूर्ण है – इस नयी कला के सर्जन में हिन्दू त्रिमूर्ति के प्रत्येक सदस्य का सहयोग प्राप्त करने का संकल्प है और यह दावा करने का प्रयास किया गया है कि परम्परा–प्रथित पंचम वेद नाट्यवेद था। इतिहास–काव्य में अभिलिखित और उपयोजित परम्परा बहुत–सी परम्पराओं को

पंचम वेद मानती है। इन परम्पराओं का समावेश करने वाले रूप में नाट्यवेद का निरूपण कर के नाट्यशास्त्र इस बात को ध्वनितार्थतः स्वीकार करता है। यह उपाख्यान बहुत पुरातन नहीं है और न तो उसे नाट्यशास्त्र के संकलन के बहुत पहले का मानना चाहिए। उस ग्रन्थ का समय अनिश्चित है; परन्तु हम किसी निश्चय के साथ तीसरी शती ई. के पूर्व नहीं रख सकते। दैवी उत्पति खोजने की भारतीय प्रवृत्ति के कारण हो सकता है कि यह परम्परा बहुत पहले रही हो, किन्तु किसी प्रमाण के अभाव में यह प्रकल्पना मात्र रहेगी। इसके लिए कोई निर्णायक आधार प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कोई नाट्यशास्त्री वैदिक संहिताओं से ऐसे उदाहरण नहीं देता, जिसे हम नाटक का प्रतिरूप कह सकें। इससे यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक है कि उनके समय में ऐसी कोई भारतीय परम्परा प्रचलित नहीं थी, जो वेदों में नाटक के परिरक्षण की ओर संकेत करती हो। हां, (यदि उपयोगी हो तो) यह निष्कर्ष न्यायतः निकाला जा सकता है कि वैदिक साहित्य में नाटक का अभाव माना गया था। इसीलिए देवताओं को एक सर्वथा नवीन साहित्य–रूप की (जो वैदिक युग के परवर्ती काल के उपयुक्त हो) सृष्टि के लिए ब्रह्मा से प्रार्थना करनी पड़ी।

वेद के संवाद –

भारतीय परम्परा का मौन और भी अवेक्षणीय है क्योंकि ऋग्वेद में ही ऐसे अनेक सूक्त पाये जाते हैं, जो प्रत्यक्षतः संवाद हैं और जो प्रारम्भिक भारतीय परम्परा द्वारा इस रूप में स्पष्टतया स्वीकृत है। ऐसे सूक्तों की संख्या अनिश्चित है, क्योंकि जिनका संवाद–रूप स्पष्ट है, उनमें अन्य सूक्त भी जोड़े जा सकते हैं। जिनकी व्याख्या में (पात्रों के विभाजन की कल्पना करके) सुधार किया जा सकता है। परन्तु, कम से कम पन्द्रह सूक्त ऐसे है, जिनका संवाद–रूप सर्वथा निर्विवाद है और इनमें से अधिकतर सूक्त विशेष महत्त्वयुक्त हैं।

इस प्रकार 10/10 में आदिम मिथुन यम–यमी (जिनके उस उपाख्यान में मानव–जातियों की उत्पति बतलायी गयी है) वाद–विवाद में प्रवृत्त होते हैं। उपाख्यान की अपेक्षा अधिक परिष्कृत भाव वाला कवि इस कौटुम्बिक–व्यभिचार के विषय में क्षुब्ध है। यह यमी को इस रूप में निरूपित करता है कि वह अपने निवेदित प्रेम को स्वीकार करने और सफल बनाने के लिए यम को प्रेरित करने के

प्रयास में निरत होती है। लेकिन वह प्रयास (जहां तक सूक्त का सम्बन्ध है) निष्फल हो जाता है। उसी मण्डल का एक कष्टकर, किन्तु निस्संदेह रोचक सूक्त (10/15) पुरूरवा और उर्वशी का संवाद प्रस्तुत करता है। पुरूरवा, उर्वशी की चंचलता की भर्त्सना करता है, परन्तु उसे अपनी आसक्त दृष्टि से ओझल होने से रोकने में सफल नहीं होता। 7/100 में नेम भार्गव इन्द्र की स्तुति करता है, जिसका इन्द्रदेव प्रसन्न होकर उत्तर देते हैं। कभी–कभी तीन सम्भाषक होते हैं। इस रीति से अगस्त्य मुनि का अपनी पत्नी लोपामुद्रा और पुत्र के साथ प्रहेलिका–रूप वार्तालाप (1/179) होता है। (10/28) में इन्द्र और वसुक्र का कथोपकथन कम दुर्बोध नहीं है। उसमें वसुक्र की पत्नी छोटी–सी भूमिका अदा करती है। 4/18 में हमें इन्द्र, अदिति और कामदेव का बहुत ही गड़बड़ संवाद मिलता है। उससे भी कम बुद्धिगम्य इन्द्र, उनकी पत्नी इन्द्राणी और वृषाकपि का प्रसिद्ध वादविवाद (10/86) है, जिसका प्रत्येक व्याख्याता अपने पूर्ववर्तियों के विवरण की अयुक्तता दिखलाने में कुशल है, लेकिन अपने ही दोषों को पहचानने में असमर्थ प्रतीत होता है अथवा सम्भाषकों में से एक पक्ष व्यक्ति न होकर व्यक्ति–समूह हो सकता है। इस रीति से, इन्द्र की दूति सरमा अपहृत गायों को खोजती हुई असुरों (पणियों) के पास जाती है और उनसे रोचक वाद–विवाद करती है (10/108)। देवताओं को भी अपने पास तक मर्त्यों की हवि पहुंचाने का खेदजनक कार्य करते रहने के लिए अग्नि को समझाने में कठिन अध्यवसाय करना पड़ता है। (10/51/3) जिस कथोपकथन में वे प्रवृत्त होते हैं वह अत्यन्त विशद है, यहां तक कि एक ऋचा को दो सम्भाषकों के लिए खण्डों में तोड़ दिया गया है।

अपने एतिहासिक संकेतों के कारण दो संवाद ध्यान देने योग्य हैं– विश्वामित्र और उन नदियों का वार्तालाप (3/33) जिन्हें वे पार करना चाहते हैं और अपने पुत्रों के साथ वशिष्ठ का वार्तालाप (7/33), यदि वह वस्तुतः उस सूक्त के सम्भाषकों का सही विवरण है। इन्द्र पुनः मरूतों से विवाद करते हैं (1/165/170), जिन्होंने वृत्रासुर के विरूद्ध रण–सम्मर्द में इन्द्र का साथ छोड़ कर अपने को उनकी दृष्टि में अवमानित कर लिया था किन्तु जो अंततोगत्वा उनके क्रोध को शान्त करने में सफल हुए थे। पहले सूक्त में अगस्त्य (अन्त में परिणाम का समाहार करते हुए अपने लिए देवताओं के अनुग्रह की प्रार्थना करते हुए) बीच में पड़ने को प्रस्तुत जान

पड़ते हैं। उसी प्रकार विश्वामित्र के संवाद का वृत्तान्त इस दृढ़ कथन के साथ समाप्त होता है कि अपने पुरोहित की मध्यस्थता से मार्ग प्राप्त कर भरतों ने लूट के माल की खोज में नदियों को सफलतापूर्वक पार किया। कवि ने स्वयं ही उस रोचक किन्तु सुबोध, सूक्त (4/42) का (जिसमें इन्द्र और वरूण अपनी सापेक्ष श्रेष्ठता के लिए विवाद करने को उद्यत जान पड़ते हैं) स्प्ष्ट विवरण दिया है। जहां अनिवार्य नहीं वहां भी उसका हस्तक्षेप सन्देह की वस्तु है।

यह बात स्पष्ट है कि कल्प–साहित्य को यह ज्ञात नहीं था कि ऋग्वेद के संवादों का क्या किया जाए। रचना की यह शैली पिछले वैदिक काल में लुप्त हो गयी। यह अर्थपूर्ण है कि अथर्ववेद में इस प्रकार का केवल एक सूक्त (5/11) है, जिसमें ऋत्विज प्राप्य गौ के लिए अथर्वा देवता से प्रार्थना करता है; देवता उसकी प्रार्थना स्वीकार करने को अनुग्रहशील नहीं हैं, लेकिन अन्त में अनुनय से द्रवीभूत होकर प्राप्य पारितोषिक के साथ ही शाश्वत मैत्री का वचन देता है। अतएव यह बात तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है कि ई.पू. पांचवी शती में हम यास्क और शौनक को इस विषय में मतभेद रखते हुए पाते हैं कि सूक्त 10/95 संवाद है, (जैसा कि पहले ने माना है) अथवा उपाख्यान मात्र (जैसा कि दूसरे ने समझा है) सायण–भाष्य से हमें पता चलता है कि परम्परा लगभग सभी सूक्तों का कर्मकाण्ड–सम्बन्धी प्रयोग बताने में असमर्थ रही। 10/85) की स्थिति अपवाद है, परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि उस सूक्त में यथार्थ संवाद का तत्त्व नगण्य है। उसके तीनों वक्ता वार्तालाप न करके पहेलियां–सी बुझाते हैं। अतएव, उत्तरकालीन कर्मकाण्ड में इसको जो नगण्य स्थान मिला है, उसमें इसको बिठा देना सरल था। अतएव, हमें मानना पड़ेगा कि इन संवादों में उस काव्य शैली के अवशेष मिलते हैं जो पिछले वैदिक काल में प्रचलित नहीं रही।

इसका मूल उद्देश्य अस्पष्ट है, परन्तु सन् 1869 ई. में मैक्समूलर ने ऋग्वेद 1/165 के विवरण के प्रसंग में एक बहुत ही रोचक सुझाव प्रस्तुत किया था। उनका अनुमान है कि मरूतों की आराधना में किये गये यज्ञों के अवसर पर इस संवाद का पाठ होता था अथवा सम्भवतः दो दलों द्वारा इसका अभिनय किया जाता था, एक दल इन्द्र का प्रतिरूपण करता था और दूसरा मरूतों एवं उनके अनुयायियों का। 1890 ई. में इस सुझाव को प्रोफेसर लेवी ने अनुमोदन के साथ दोहराया।

उन्होंने एक और तर्क यह दिया है कि सामवेद से सूचित होता है कि वैदिक युग तक संगीत–कला का पूर्ण विकास हो चुका था और इसके पहले ही ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि शोभन–वेश–भूषित बालाएं नाचती तथा प्रेमियों को आकर्षित करती थी। अथर्ववेद से पता चलता है कि पुरुष किस प्रकार वाद्य की लय पर नाचते और गाते थे। इसलिए तर्क–बुद्धि से यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है कि ऋग्वेदीय काल में नाटकीय प्रदर्शनों की जानकारी थी, जिनका स्वरूप धार्मिक था; जिनमें पुरोहित लोग देवलोक की घटनाओं का पृथ्वी पर अनुकरण करने के लिए देवताओं और ऋषियों की भूमिका ग्रहण करते थे।

इस मत का तर्क–संगत परिणाम प्रोफेसर वनग्रेडर के श्रमपूर्वक निष्पादित सिद्धान्त में मिलता है, वह यह कि संवादात्मक सूक्त और कतिपय एकालाप भी (उदाहरणार्थ 10/111, जिसमें रूचिकर सोम–पान के नशे में इन्द्र अपना गुण–गान करते हुए दिखाई देते हैं। मानवजाति–विज्ञान से हमें बहुत–सी जातियों में गीत, नृत्य और नाटक के घनिष्ठ सम्बन्ध की सूचना मिलती है। यह एक विचित्र बात है कि वैदिक धर्म देवताओं के नर्तक–रूप से परिचित है। इसकी सन्तोषप्रद व्याख्या तब तक नहीं हो सकती जब तक यह न मान लिया जाए कि पुरोहित लोक कर्मकाण्ड–सम्बन्धी नृत्यों का प्रदर्शन देखने के आदी थे। वे नृत्य ब्रह्माण्ड में चल रहे उस महानृत्य के अनुकरण थे, जिससे (एक मत के अनुसार) विश्व की सृष्टि हुई थी। इस प्रकार के नृत्यों में समानुभूति उत्पन्न करने का जादू होता है। उनका प्रतिरूप उन महान् याज्ञिक अनुष्ठानों में मिलता है जो 'ब्राह्मण'–युग में (ब्रह्माण्ड–रचना का धरती पर प्रदर्शन करने के लिए) किये जाते थे। यह यथार्थ है कि ऋग्वेद में हमें लिंगमूलक नृत्य नहीं मिलते जिनका यूनान और मेक्सिकों में नाटक की उत्पति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है। इसका कारण यह था के ऋग्वेद को पुरोहित अनेक विषयों में कठोर संयमी और उन्होंने किसी भी प्रकार के लिंगमूलक देवताओं को अस्वीकार किया। अतएव कर्मकाण्ड–सम्बन्धी रूपक नाटक के विकास की मुख्य रेखा के कुछ बाहर–से हैं। उनका लोक प्रचलित पक्ष युगों को पार करता हुआ बंगाल के साहित्य में सुप्रसिद्ध यात्राओं में अपरिष्कृत रूप में बच रहा है। इसके विपरीत, परिष्कृत और यज्ञोपयोगी रूप में ढाला गया वैदिक रूपक विलीन हो गया और उसकी कोई साक्षात् परम्परा शेष नहीं रही।

वैदिक संवाद बीज–रूप में रहस्यात्मक रूपक हैं, इस मत को डॉ. हर्टल का स्वतन्त्र समर्थन प्राप्त है उनका तर्क विशेष कर इस सिद्धान्त पर आधारित है कि वैदिक मंत्र सदैव गाये जाते थे और गान में विभिन्न सम्भाषकों में अपेक्षित भेद करना एक ही गायक के लिए सम्भव नहीं हो सकता था, यह तभी सम्भव होता यदि मंत्र गाये न जाते। इसलिए वे सूक्त नाट्यकला का आरम्भिक रूप प्रस्तुत करते हैं। उन सूक्तों की तुलना 'गीतगोविन्द' के रूप में से की जा सकती है परन्तु, अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि डॉ. हर्टल सुपर्णाध्याय में विस्तृत पैमाने पर एक वास्तविक रूपक खोजने की कोशिश करते हैं। वह एक विलक्षण और अपेक्षाकृत उत्तरकालीन वैदिक रचना है। इस प्रकार उनके मत से वैदिक रूपक की स्थिति विच्छिन नहीं है; ऋग्वेद में वह अपने प्रारम्भिक रूप में दृष्टिगोचर होता है, सुपर्णाध्याय उसे और अधिक विकास के मार्ग पर प्रदर्शित करता है, और यात्राओं में हम उस प्राचीन रूप की अनुवृति देख सकते; इसमें हमें वैदिक रूपक से भारतीय प्रतिष्ठित नाटक के विकास को समझने में सहायता मिलती है। इस विषय में नाट्य–सिद्धान्त के दानों पक्षपोषकों में स्पष्ट मतभेद है क्योंकि प्रोफेसर वान श्रेडर यात्राओं को ही उत्तरकालीन नाटक से वस्तुतः सम्बद्ध मानते हैं। उनके मतानुसार उत्तरकालीन नाटक विष्णु कृष्ण और रूद्र–शिव की उपासना–पद्धति के निरन्तर सम्पर्क से संवर्धित हुआ, किन्तु वैदिक संवादों की भांति उसी मूल से एक भिन्न विकास के रूप में। नाटक के इस दूसरे पक्ष का संकेत उन्हें नाट्य के साथ गन्धर्वों और अप्सराओं के परम्परा प्रथित सम्बन्ध में मिलता है, क्योंकि ये देवता उनकी दृष्टि में तत्त्वतः लिंगमूलक देवता है।

यह निस्संदेह सम्भव है कि इन संवादों द्वारा प्राचीन कर्मकाण्ड के अंशों का अभिनय किया जाता था जिसमें पुरोहित देवों या असुरों का रूप धारण करते थे, क्योंकि इस प्रकार के अनुमान के लिए प्रचुर उदाहरण मौजूद हैं। लेकिन इतना पुष्ट आधार नहीं है जो इन सूक्तों की इस प्रकार व्याख्या के लिए हमें बाध्य करें। ऋग्वेद में यज्ञ–सम्बन्धी बातों के अतिरिक्त और कुछ नहीं– यह ऐसी अभिधारणा है जो स्वयं भारतीयों द्वारा नहीं बनायी गयी है। इसका एक मात्र औचित्य इस बात में है कि यह समिति की इच्छा से अनुप्रमाणित है। इसके प्रतिकूल, ऋग्वेद को सूक्त–संग्रह मानना सर्वथा तर्कसंगत और कहीं अधिक स्वाभाविक है। उसके

अधिकांश सूक्त कर्मकाण्डमूलक हैं, किन्तु उसमें कुछ धर्म निरपेक्ष काव्य भी समाविष्ट है। हम वशिष्ठ–विश्वामित्र– संघर्ष के सूक्तों को यथोचित रूप से केवल इसी वर्ग के अन्तर्गत रख सकते हैं। अतः यह तथ्य स्वाभाविक है कि उत्तरकालीन वैदिक साहित्य में इस प्रकार के मंत्र दृष्टिगोचर नहीं होते क्योंकि वह साहित्य निर्विवाद रूप से कर्मकाण्डोपयोगी सूक्तों का ही संग्रह प्रस्तुत करता है और इसलिए उसमें कोई ऐसी वस्तु समाविष्ट नहीं की गई जो उसके लिए उपयुक्त न हो अतएव यह मान लेना असंगत है कि सभी सूक्तों की कर्मकाण्डपरक व्याख्या आवश्यक है और उन्हें कर्मकाण्ड– सम्बन्धी रूपक समझना तर्क–विरूद्ध है। किसी भी दिशा में इस मत को स्वीकार करने का औचित्य केवल इस बात में है कि यह किसी अन्यथा प्रतिपादित समाधान की अपेक्षा अधिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

इस बात की निश्चयात्मक प्रतीति नहीं होती कि किसी भी पक्ष में आवश्यक प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं। सूक्त 1/112 (जो चार ऋचाओं में विभिन्न पुरुषार्थों का कुछ परिहासमय शैली में वर्णन करता है जिनकी टेक है – इन्द्रायेन्दो परिस्रव) ऐसे लोक प्रचलित पर्व के प्रयाण–गीत में रूपान्तरित हो गया है जिसमें स्वांग करने वाले लोग कृषि–देवताओं का रूप धारण करते और प्रजनन के प्रतीक लेकर चलते हैं। इन बातों की कोई परम्परागत जानकारी नहीं है और निश्चय ही इस सूक्त से सामान्य तर्कशील व्यक्ति को इस विषय में कोई संकेत नहीं मिलता। इसके विपरीत ऐसा प्रतीत होता है कि यह विनोद–व्यंग्य की बड़ी स्वाभाविक रचना है जिसकी पुष्टि टेक के प्रयोग द्वारा होती है। ऋग्वेद में अभिव्यक्त प्रगतिशील तथा संदेहवादी विचार प्रस्तुत करने वाले दार्शनिकों में व्यंग्य की सम्भावना को अस्वीकार करना निश्चय ही अविवेकपूर्ण है। यह व्याख्या कि वृषाकपि–सूक्त (10/86) नाट्य–रूप में एक प्रजनन–चमत्कार–विषयक रचना है विदग्धतापूर्ण है, किन्तु दुर्भाग्यवश इससे प्रस्तुत सूक्त की व्याख्या में किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती और इस कारण से यह उतनी ही महत्त्वहीन है जितनी कि अन्य प्रस्तुत की गयी सम्भावित व्याख्याएं। विलक्षण मुद्गल–सूक्त (10/102) में वर्णित उत्सव के अवसर पर किसी अनुकरणात्मक दौड़ के अन्वेषण का प्रयास भी उसी प्रकार तिरस्करणीय है। यह सूक्त (यदि यह कुछ भी बोधगम्य है) पौराणिक निर्देश करता हुआ प्रतीत होता है, किसी वास्तविक अथवा अनुकरणात्मक दौड़ का नहीं।

सूक्त 10/111 (जो सोम–पान के गुण–गान करते हुए इन्द्र के मुख से निःसृत एक सरल एकालाप है) उस कर्मकाण्ड का एक भाग माना जाना चाहिए जिसमें (उस अनुष्ठान में सोमपान की समाप्ति पर) एक पुरोहित इन्द्र की भूमिका ग्रहण करके आगे आता है और एकालाप द्वारा सोमरस की शक्ति की प्रशंसा करता है – यह सिद्ध करने के लिए मानवजाति–विज्ञान– सम्बन्धी सादृश्य उपस्थित करने का प्रयत्न पटुतापूर्ण है। चोल जातियों में मधुपानोत्सव के बाद मधुपान का प्रभाव प्रदर्शित करता हुआ एक देवता प्रवेश करता है, जबकि एक गायक उसके प्रभावकारी गुणों का गान करता है। किन्तु इस उपपति में एक घातक दोष है; सूक्त अपने आप में सर्वथा स्पष्ट है कि और इतनी खींचतान करके उसकी व्याख्या का प्रयत्न शक्ति का अपव्यय है। मण्डूक–सूक्त (7/103) में मेंढकों के चेहरे लगाए हुए वृष्टि–प्राप्ति के लिए टोटके के रूप में नृत्य करते हुए, पुरुषों द्वारा गाये गये गीत के अन्वेषण का प्रयत्न भी उसी प्रकार ग्रहणीय है। यदि हम मान लें कि यह सूक्त वस्तुतः वर्षा के लिए किये गये टोटके के रूप में अभिप्रेत है (जो प्रमाणित न होने पर भी कुछ–कुछ सम्भाव्य है), तो इसके लिए किसी प्रकार की अतिरिक्त व्याख्या अपेक्षित नहीं है। यदि हम इस सुझाव को न स्वीकार करके यह प्राचीनतर दृष्टि अपनाते है कि इस सूक्त में किन्हीं कर्म काण्डियों की विचित्र क्रियाओं की हास्यास्पद ढंग से नकल की गयी है तो इसका प्रजनन सम्बन्धी टोटके वाला रूप बिल्कुल ही लुप्त हो जाता है। कहा गया है कि अक्षस् सूक्त (10/34), जिसमें एक जुआरी उस पासे के प्रति अपने घातक राग पर पश्चाताप करता है जो उसकी पत्नी तक के सत्यानाश का कारण हुआ है, एक नाटकीय एकालाप है जिसमें नट उछलते तथा गिरते हुए सांपों का अभिनय करते हैं। इस ऊट–पटांग निष्कर्ष में अध्ययन–विधि की त्रुटियां बहुत अच्छी तरह दिखायी देती है। यम एवं यमी का संवाद एक प्रजनन–सम्बन्धी रूपक के रूप में परिणत होता है। जिसमें मिथुन का महत्त्वपूर्ण अंश वैदिक युग की अतिविनीतता के कारण छोड़ दिया गया है। जिस विलक्षण सूक्त (4/18) में इन्द्र की अस्वाभाविक उत्पति का वर्णन है, वह इस कल्पना से रूपक बन जाता है कि तेरह ऋचाओं में से सात स्वयं कवि पर आरोपित है। वस्तुतः प्रत्येक उदाहरण में हमारे सामने सम्भावना मात्र प्रस्तुत की गयी, जिसमें कहीं–कहीं हास्यास्पदता आ गयी है, और जो सूक्तों की व्याख्या में

हमारी कुछ भी सहायता नहीं करती। एक मत है कि सरमा और पणियों के सूक्त का दो भिन्न दलों द्वारा पाठ किया जाता था और इस प्रकार वह बीजरूप में एक कर्मकाण्ड–सम्बन्धी रूपक था। इस मत की कोई बात कल्पना से परे नहीं है। निश्चित बात यह है कि उत्तर वैदिक काल इस प्रकार के प्रयोग से बिल्कुल अपरिचित था। केवल एक संवादात्मक सूक्त (10/86) का प्रयोग मिलता है जिसका नियोजन ऐसे स्थल पर किया गया है जहां कुछ भी नाटकीय नहीं है। सम्पूर्ण प्रक्रिया के बेढ़ंगेपन का कदाचित् पूर्णतम प्रदर्शन अगस्त्य–लोपामुद्रा–विषयक सूक्त (1/189) के विवेचन में होता है, क्योंकि यह फसल कट जाने के बाद किया जाने वाला एक प्रजनन–सम्बन्धी अनुष्ठान बन जाता है; 'लोपामुद्रा' की व्याख्या की जाती है – जिस पर लोप की मुहर लगी हुई है। यह अद्भुत निर्वचन वैदिक भाषा में असम्भव है। यह सूक्त की पतिव्रत धर्म को छोड़कर रति का आनन्द लेने वाली इस स्पष्ट वैकल्पिक अर्थ के कहीं अधिक अनुकूल पड़ता है। इन्द्र और मरूतों के सूक्तों (1/165, 170 और 171) की व्याख्या के लिए हमें मानना होगा कि उनमें नाटकीय प्रदर्शन के तीन दृश्य हैं। यह प्रदर्शन सर्प वृत्त पर इन्द्र की विजय के समारोह में सोमयज्ञ के अवसर पर किया जाता है जिसकी समाप्ति शस्त्र–सज्जित युवकों द्वारा प्रदर्शित मरूतों के नृत्य से होती है। यह शस्त्र–नृत्य प्राचीन वनस्पति–याग का, पुराने वर्ष को, शीत ऋतु को अथवा मृत्यु को खदेड़ने का, अवशेष है; जो रोमन, ग्रीक, फ्रीजिअन और जर्मन तलवार (का चमत्कार दिखाने वाले) नर्तकों के नृत्यों का आधार है। जो (सूक्ष्म विवरणों को छोड़कर) बिना गम्भीर कठिनाई के अपने आप में ग्राह्य है ऐसे सूक्तों की व्याख्या करने के लिए उपपतियों का जाल बुनना कैसे न्यायसंगत हो सकता है?

डॉ. हर्टल का कथन है कि मंत्र गाये जाते थे और एक ही गायक की आवाज विभिन्न सम्भाषकों में भेद नहीं कर सकती थी, इसलिए प्रयोक्ताओं के दो दलों की कल्पना आवश्यक है। उक्त आधार पर प्रतिपादित तर्कों को भी अकाट्य समझना असम्भव है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम इस आवश्यकता को स्वीकार कर लेते हैं तो कारणपूर्वक यह मानने को प्रवृत होते कि अभिनय तथा नृत्य के साथ गीत गाया जाता जिससे नाटक विकास के मार्ग पर अग्रसर होता परन्तु हमें यह पता नहीं कि ऋग्वेद के मंत्र सदैव गाये जाते थे। इसके विपरीत, हम ध्रुव

निश्चय के साथ यह जानते हैं कि (जब सामवेद के मंत्र गाये जाते थे) ऋग्वेद की ऋचाएं 'शंसित' होती थी। यह ठीक है कि उस शंसन (पाठ) के यथार्थ रूप की ठीक–ठीक जानकारी हमारे पास नहीं है, किन्तु यह मानने के लिए तनिक भी आधार नहीं है कि पाठ–कर्ता अपनी पाठ–विधि की भिन्नता से दो भिन्न सम्भाषकों के पार्थक्य को सूचित नहीं कर सकता था। उक्त तर्क में इस बात की उपेक्षा की गयी है। यह तथ्य उसके लिए घातक है। इसके अतिरिक्त, हमें यह मान लेना चाहिए कि इन मंत्रों के रचयिताओं अथवा पाठकर्ताओं को पात्रों के पार्थक्य का ज्ञापन जिस मात्रा में अभीष्ट था उसके विषय में हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं। हम सम्यक् रूप से नहीं जानते और न कर्मकाण्ड की पाठ्यपुस्तकें जानती थी, कि इन मंत्रों का किस रीति से प्रयोग किया जाता था। हमें ऋग्वेद में अनेक दार्शनिक सूक्त मिलते हैं जैसे यम–यमी संवाद। यह मांग किये बिना कि यह कर्मकाण्ड का अंश है, हम यह क्यों मान लें कि इस प्रकार का दार्शनिक संवाद सम्भव है? सातवें मण्डल में ऐतिहासिक सूक्त मिलते हैं। विश्वामित्र और सरिताओं के संवाद को हम नाटक के रूप में क्यों परिवर्तित करें? हम यह आग्रह क्यों करें कि सभी मंत्र कर्मकाण्ड के उपयोग के लिए रचे गये थे, जब कि हम यह जानते हैं कि अंत्येष्टि–संस्कार के अनन्तर कालक्षेप के लिए उपयुक्त बातों में से प्राचीन कहानियां भी होती थी और राजा के व्यापक एकाधिपत्य की घोषणा के लिए अनुष्ठित महान् अश्वमेध के अवसर पर अवकाश के समय ब्राह्मण और सैनिक दोनों ही समय काटने के लिए गीत गाते थे? हम औचित्य के साथ मान सकते हैं कि ऋग्वेद में ऐसे सूक्त उपलब्ध हैं, जिनका प्रत्यक्ष प्रयोजन कर्मकाण्ड या टोटका नहीं है; अक्षस् सूक्त को कल्पना की किसी बुद्धि संगत खींचतान द्वारा कर्मकाण्ड सम्बन्धी सूक्त नहीं माना जा सकता।

इस दृष्टि को अपनाना भी असम्भव है कि वैदिक रूपक पुरोहितों द्वारा प्रजनन–याग की अस्वीकृत के निराशाजनक प्रभाव के फलस्वरूप लुप्त हुआ। इसके प्रतिकूल हम देखते हैं कि प्रजनन–याग आगे चलकर महाव्रत समारोह में और अश्वमेध में भी पूर्णतः मान्य है। ये दोनों अन्य वैदिक संहिताओं को विदित है, यद्यपि ऋग्वेद में अनुष्ठान की यह विशिष्टता (कम से कम प्रत्यक्षतः) निर्दिष्ट नहीं है। इसके अतिरिक्त, यदि प्रजनन–याग की योग्य कोई दूसरी बात नहीं है। नाट्यशास्त्री इस बात का कोई संकेत नहीं देते कि पद्यों की अपेक्षा गद्य का रूप

किसी प्रकार से कम स्थिरीकृत समझा जाता था अथवा यह कि नाटककार इस बात के लिए बाध्य नहीं था कि वह एक की रचना में उतना ही सावधान रहे जितना दूसरे की रचना में और नाटक की हस्तलेख–परम्परा जहां तक स्रोत का सम्बन्ध है, दोनों की किसी भिन्नता को इंगित नहीं करती।

ख. संस्कृत में महानाटकों की शृंखला –

बालरामायण – बालरामायण के प्रणेता यायावरवंशीय महाकवि राजशेखर ऐसे प्रभाभास्वर प्रोज्ज्वल नक्षत्र हैं, जिनकी यशोविभूति साहित्य के विविध क्षेत्रों को आलोकित करती है। वे साहित्यशास्त्र के महनीय प्रणेता, नाट्यविद्या के परमाचार्य, काव्य, छन्द, ज्योतिष, भूगोल इत्यादि विविध विषयों के पारदृश्वा विद्वान् और समग्र भारतीय वांगमय के हस्तामलकवत् द्रष्टा हैं। वे न केवल संस्कृत–साहित्य के ही चूडान्त विद्वान थे, अपितु प्राकृत भाषाओं के विविध रूपों का भी उन्हें पूर्णतः ज्ञान था और इस पाण्डित्य के आधार पर उनके समकालीन शंकरवर्मा ने उन्हें वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ और भवभूति का अवतार कहा था। जिसे स्वयं राजशेखर ने स्वीकृत करते हुए उद्धृत किया है

बभूव वाल्मीकभवः पुरा कवे –
स्ततः प्रपदे भूवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया –
स वर्तते संप्रति राजशेखरः।। (बा.रा. 1.16)

राजशेखर की वंश परम्परा– राजशेखर ने अपने पूर्वजों का निर्देश अपनी कृतियों में आत्मश्लाघा पूर्वक किया है, वे अपने कुल का नाम यायावर बताते हैं।

यायावरीयः संक्षिप्य मुनीनां मतविस्तरः। (का.मी.)
फुल्ला कीर्तिर्भ्रमति सुकवेर्दिक्षु यायावरस्य। (बा.रा. 1/6 इत्यादि)
यायावरकवेर्वाचः मुनीनामिव वृत्तयः।। (धनपाल–तिलकमंजरी)

राजशेखर के प्रपितामह का नाम अकाल जलद था, जिनका उल्लेख (बा.रा. 1/23) में किया गया है।

अकाल जलद के अनन्तर राजशेखर ने सुरानन्द का उल्लेख किया है। आप्टे ने इन्हें राजशेखर का पितामह माना है, जो प्रसंगतः उचित लगता है; क्योंकि

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में उल्लेखवान् (प्रतिभा से उद्भावित) मार्ग के निर्देश में सुरानन्द का उल्लेख किया है–

सोऽयमुल्लेखवाननुग्राह्यो मार्गः इति सुरानन्दः।

राजशेखर का समय– राजशेखर के काल के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। ईसा की सातवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक विभिन्न लोगों ने इसे दर्शाया है तथा परस्पर एक दूसरे के मत का खण्डन–मण्डन किया है। परन्तु अब अधिकांश विद्वान् इन्हें नवीं सदी के उत्तरार्द्ध और दसवीं सदी के मध्यभाग तक मानते हैं। इस विषय में स्वयं राजशेखर अपने को महेन्द्रपाल का गुरू मानते हैं।

देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः। (बा.रा. 1/18)

तथा–रघुकुलतिलको महेन्द्रपालः सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः।

(विद्धशाल भंजिका 1/6)

बालकविः कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्यायः। (कर्पूरमंजरी)

इन महेन्द्रपाल की राजधानी कान्यकुब्ज थी, जिसे राजशेखर ने 'सर्वमहापवित्र' कहा है। महेन्द्रपाल गुर्जर–प्रतिहार वंश के प्रतापी राजा था। इस वंश के प्रतिहार होने का मूल कारण इसके लक्ष्मण का वंशज होने से दिया जाता है। क्योंकि लक्ष्मण राम के प्रतिहार (द्वारपाल) थे। अतः लक्ष्मण के वंशज अपने को प्रतिहार कहते थे।

महेन्द्रपाल के शिलालेखों का समय विक्रमसंवत 960 से 1025 तक है। झांसी के शिलालेखों में महेन्द्रपाल के दो शिलालेख हैं; जिनका समय संवत् 960 तथा 964 हैं। डॉ. बी. एन. पुरी ने महेन्द्रपाल की मृत्यु 910 ई. में मानी है। महेन्द्रपाल के बाद महीपाल या क्षितिपाल शासक हुये। जिनका उल्लेख राजशेखर ने बालभारत में भी किया है। इन महीपाल या क्षितिपाल के बाद उनके वैमात्र भाई विनायकपाल शासनारूढ़ हुए। इनका राज्यारोहण काल 931 ई. माना जाता है। राजशेखर के उपर्युक्त उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि उनके ग्रन्थ महेन्द्रपाल और महीपाल के समय में लिखे गये। महेन्द्रपाल के वे गुरू थे, अतः सम्भवतः अवस्था में उनसे बड़े रहे हों। महेन्द्रपाल का शासनारोहण 890 ई. है। अतः राजशेखर का जन्म 850 या 860 ई. के आसपास माना जा सकता है। महीपाल का मृत्युकाल 931 ई. है। अतः वे 850 ई. या इसके कुछ पूर्व या बाद में रहे होंगे। इन दोनों सम्राटों के वे गुरू थे।

बाह्य साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि धनन्जय, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, कुन्तक आदि ने राजशेखर का उल्लेख किया है। इनमें सबसे प्राचीन धनन्जय है (974 ई. –994 ई.) जिन्होंने 'दशरूपक' (3/15 तथा 4/54–55) में राजशेखर की कर्पूरमंजरी तथा विद्धशालभंजिका का उल्लेख किया है। अतः राजशेखर 974 ई. में वर्तमान थे या उससे पहले थे। इसी प्रकार सोमदेव ने अपने 'यशस्तिलकचम्पू' (रचनाकाल 951 ई.) में (चतुर्थ उच्छास 2/113) राजशेखर का उल्लेख किया है। अतः राजशेखर का 950 ई. भी पूर्ववर्ती होना सिद्ध होता है।

अन्तः साक्ष्यों में राजशेखर ने स्वयं वाल्मीकि से लेकर रत्नाकर तक का उल्लेख किया है। रत्नाकर आनन्दवर्धन के समकालीन तथा काश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा के सभापण्डित थे, जिनका समय 855 ई. से 883 ई. है। राजशेखर का समय 9वीं सदी के उत्तरार्द्ध या अन्तिम अंश से दशवीं के मध्य या पूर्वार्द्ध में मान सकते हैं।

बालरामायण का कथानक –

प्रथम अंक में शुनःशेप के द्वारा यह ज्ञात होता है कि विश्वामित्र राक्षसों से रक्षा के निमित्त रामचन्द्र को लाने के लिए अयोध्या गये हैं और शुनःशेप को अपना प्रतिनिधि बनाकर जनक के यज्ञ में भेजा है। रावण के चर राक्षस के आगमन से वहीं विदित होता है कि सीता–स्वयंवर में धनुष के भारोपण से सीता को प्राप्त करने के लिए रावण भी आने वाला है और उसने मायामय नामक राक्षस को परशुराम के पास उनका परशु मांगने के लिए भेजा है। शुनःशेप और राक्षस में संवाद होता है तथा उसके संवाद में विश्वामित्र और अगस्त्य के विषय में उनके प्राचीन चरित्र का भी उल्लेख होता है। तदनन्तर पुष्पक विमान से रावण एवं प्रहस्त मिथिला में पहुंचते हैं। प्रहस्त रावण के आगमन की सूचना जनक और शतानन्द को देता है। वे उसका स्वागत करते हैं, किन्तु सीता उसके आने की बात से व्यथित होती है। रावण के लिए धनुष मंगाया जाता है और सीता भी उपस्थित होती है। सीता और सखियां भी रावण को देखकर दुःखित होती हैं। रावण प्रथमतः तो क्रोधपूर्वक धनुष को उठाता है पर उसे यह विचार कर कि साधारण मनुष्य की भांति वह भी धनुष आरोपण के पण से विवाह नहीं करेगा, धनुष फेंक देता है। इसे जनक शिव–धनुष का अपमान मानकर क्रुद्ध हो उठते हैं और रावण को प्रथमतः तो शस्त्र और पुनः

शाप से दण्डित करना चाहते हैं। शतानन्द उन्हें शान्त करते हैं। रावण उनके इस क्रोध का उपहास करता है। रावण वहां प्रतिज्ञा करता है कि सीता का जो वरण करेगा उसके कण्ड को काटकर उसके रक्त का आस्वाद मेरी चन्द्रहास असि करेगी। इसी समय रावण की सेना के आने की सूचना मिलती है। माध्यन्दिन सन्ध्या का समय जानकर रावण मिथिलापुरी के समीपवर्ती स्थान में दो–तीन दिन रहने के लिए चला जाता है। नाटक की कथा का बीज पौलस्त्य रावण की प्रतिज्ञा का उल्लेख होने के कारण इस अंक का नाम 'प्रतिज्ञापौलस्त्य' रखा गया है।

द्वितीय अंक में परशुराम और रावण के वाग्विवाद का वर्णन है। अंक के प्रारम्भ में नारद तथा शिव के गण भृंगिरिटि के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि परशु मांगने से कुपित परशुराम रावण से युद्ध करने के लिए आ रहे हैं। रावण सीता का स्मरण कर रहा है कि उसी समय मायामय नामक राक्षस आकर सूचना देता है कि परशुराम ने परशु नहीं दिया। तत्काल ही परशुराम भी अपने शिष्य माठर के साथ उपस्थित हो जाते हैं। दोनों का वार्तालाप विवाद में परिवर्तित हो जाता है। दोनों एक–दूसरे पर आक्षेप करते हैं। दानों युद्ध के लिए उद्यत होते हैं, पर शिवादेश से भृंगिरिटि दोनों को रोकते हैं। जामदग्न्य राम तथा रावण के वाक्कलह के कारण इसका नाम रामरावणीय रखा गया है।

तृतीय अंक विलक्षलंकेश्वर नायक है। इसमें गृधमिथुन के कथनोपकथन द्वारा सूचना मिलती है कि यज्ञ–रक्षार्थ राम ने ताटका आदि का वध कर दिया है तथा रावण के विनोदार्थ सीतास्वयंवर नामक नाटक का अभिनय होने जा रहा है। रावण के सम्मुख दिव्य पात्र 'सीतास्वयंवर' का अभिनय करते है, जिसमें विश्वामित्र के साथ लक्ष्मण सम्मिलित होते हैं। सीता स्वयंवर में नाना देशों के नरपति सम्मिलित होते हैं। धात्री घोषणा करती है कि शिवधनुष को भंग करने वाला ही सीता का वरण करेगा। नाना देशों के राजाओं का बड़ा ही सूक्ष्म और रोचक वर्णन है। जब राजा शिव धनुष तोड़ने में असफल होने पर राम धनुर्भंग करते हैं और सीता का पाणिग्रहण करते हैं। यह देखकर रावण उत्तेजित हो उठता है और प्रतीहारी उसे समझाती है कि यह वास्तविक दृश्य नहीं, अपितु नाटक है रावण शान्त होता है। वैतालिक सन्ध्या की सूचना देता है। रावण अपने प्रासाद में लौटता है। रावण के वैलक्ष्य को लक्ष्य कर इस अंक का नाम विलक्षलंकेश्वर रखा गया है।

चतुर्थ अंक में उपाध्याय और बटु के संवाद से सूचना मिलती है कि धनुर्भंग का वृत्तान्त सुनकर क्रुद्ध परशुराम श्रीरामचन्द्र से युद्ध करने के लिए मिथिला आ रहे हैं। दशरथ के मिथिला पहुंचने पर दौवारिक सूचित करता है कि विवाह–कर्म सम्पन्न हो चुका है और राम अयोध्या को प्रस्थान करने वाले हैं। गुरूजन सीता को स्त्रियों के धर्म का उपदेश करते हैं। इसी समय जामदग्न्य राम उपस्थित होते हैं। परशुराम राम पर अत्यन्त क्रुद्ध हो आक्षेप करते हैं। राम अत्यन्त विनम्रता और शिष्टता से उनका सत्कार करते हैं। विश्वामित्र भी समझाने का प्रयास करते हैं, पर परशुराम शान्त नहीं होते अपितु धमकी देते हैं। तदनन्तर वे मिथिला की समीपवर्ती भूमि में युद्ध के लिए चले जाते हैं। भार्गवभंग इस अंक की संज्ञा है, क्योंकि इसमें परशुराम की पराजय होती है, जिसकी सूचना अगले अंक में दी गई है।

पंचम अंक में माल्यवान् के वार्तालाप से विदित होता है कि परशुराम और श्रीराम के विवाद में राम विजयी हुये। यह भी पता चलता है कि रावण सीता में आसक्त है और हरण करना चाहता है। रावण के सन्तोष के लिए यन्त्र–जानकी का निर्माण किया गया है। यन्त्र–जानकी और उसकी सखी सिन्दुरिका रावण के सामने उपस्थित की जाती है। विरह–दग्ध रावण प्रणयालाप करता है और आलिंगन के उद्योग में यन्त्र–जानकी का उसे ज्ञान होता है, जिसके कण्ठ में सारिका बैठी है। रावण प्रमोद वन में जाता है, जहां उसकी कामशान्ति के लिए षड्ऋतु की अवतारणी होती है। उसकी कामशान्ति के लिए नदियां, अप्सराएं, गिरिकन्या, वारूणी, लक्ष्मी, सरस्वती सादर उसका उपचार करती हैं, पर उसे शान्ति नहीं मिलती। सूर्पणखा नाक कटाकर लौटती है। रावण क्रोध से प्रज्वलित हो उठता है। इस अंक में कामवेदना से रावण की उन्मत्तावस्था का द्योतन होने से इसका नाम उन्मत्त दशानन है।

षष्ठ अंक में सूर्पणखा के अपमान से क्रुद्ध रावण प्रतिशोध लेना चाहता है, पर उसे इस मिथ्या आश्वासन से आश्वस्त किया जाता है कि सीता ने कहा है कि प्रेम–परीक्षा के लिए उसी ने यन्त्र–जानकी को भेजा था और कुछ ही दिनों में रावण के पास आ जायेगी। इसी बीच सूर्पणखा और मायामय आकर सूचना देते हैं कि माल्यवान् के आदेशानुसार वे कैकेयी और दशरथ का वेश बनाकर उस समय अयोध्या गये जब दशरथ और कैकेयी देवलोक में इन्द्र के यहां गये थे और वहां

छद्म कैकेयी ने छद्म दशरथ से राम वनवास की याचना की। राम उस आज्ञा को शिरोधार्य कर वन को प्रस्थान करते हैं। जब दशरथ कैकेयी लौटते हैं तो अवाक् रह जाते हैं, वामदेव यह बताते हैं कि राम ने यह कहा कि चाहे यक्ष, राक्षस या कोई भी छद्म वेश में रहा हो, जब पिता की आज्ञा के रूप में मैंने उसे शिरोधार्य कर लिया तो वन जाऊंगा। तदनन्तर जटायु का दूत चित्रशिखण्ड आकर रावण के द्वारा सीता–हरण की सूचना देता है और जटायु के मारे जाने की खबर बताता है और दशरथ के लिए जटायु ने कण्ठगत प्राण देने पर प्रेषित की थी और कहा था कि आपकी मैत्री का ध्यान करते हुए मुझ पक्षी से जो सम्भव था वह मैंने किया। यह वृतान्त सुनकर दुःखी दशरथ गंगा–यमुना के संगम प्रयाग में प्राणत्याग कर स्वर्ग गमन की कामना करता है। नाटककार ने इस अंक में दशरथ को निर्दोष दिखाया है और बताया है कि कैकेयी तथा दशरथ की अनुपस्थिति में सूर्पणखा तथा मायामय ने माल्यवान् की योजनानुसार उनका वेश बनाकर राम को वनवास गमन कराया था और दशरथ को इसका ज्ञान मात्र तक नहीं था। एतदर्थ अंक का नाम निर्दोष दशरथ है।

सप्तम अंक में वैतालिकों द्वारा राम का यशोगान होता है और पता चलता है कि दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर राम ने अपनी विरूदावली तब तक न गाने का निर्देश दिया है, जब तक रावण का वध नहीं कर लेते। सागर तट पर सागर से मार्ग की याचना, सागर की प्रथमतः उपेक्षा और पुनः अग्नि–बाण से दग्ध होने पर प्रकट होना और सेतु–निर्माण की विधि बताना और सेतु–निर्माण इस अंक में निर्दिष्ट है। सेतु–निर्माण का काव्यात्मक ढंग से वर्णन है। इस अंक में सेतु–बन्धन कार्य में बाधा डालने के लिए राक्षस सेना आती है तथा भयंकर युद्ध के बाद परास्त होती है। रावण सीता का सिर काटकर फेंकता है, उसे देखकर राम शोक–संतप्त हो जाते हैं। पर वह यन्त्र जानकी का सिर रहता है जिससे कण्ठ में बैठी सारिका राम को बताती है कि यह वास्तविक जानकी का सिर नहीं है। तदनन्तर मन्दोदरी–पुत्र सिंहनाद जिसका शरीर अत्यन्त विशाल तथा भयंकर है, युद्ध के लिए आता है। वाद–विवाद के बाद राम कहते हैं कि नगर–सीमा से दूर हटकर युद्ध किया जाए। इस अंक में राम का अप्रतिद्वन्द्व (बेजोड़) पराक्रम वर्णित है, अतः इसका नाम असीम पराक्रम है।

अष्टम अंक (वीर–विलास) में लंका के युद्ध का विपुल वर्णन है। कंकालक नामक पात्र रावण से युद्ध में उतरने वाले वीरों कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि के अतुल पराक्रम का वर्णन है। उनके निधन पर रावण का मान ध्वस्त हो जाता है।

नवम अंक में रावण के वध की कथा है।

दसम अंक (सानन्द–रधुनन्दन) में सीता के अग्निशोधन के बाद रामचन्द्र पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या लौटते हैं। रास्ते में पड़ने वाले देशों का साहित्यिक परिचय कवि ने बड़ी सुन्दर भाषा में दिया है। कालिदास के पथ का अनुसरण कर राजशेखर ने भारत के नाना प्रान्तों की भौगोलिक और सांस्कृतिक विशेषताओं का वर्णन बड़े अच्छे ढंग से इस अंक में किया है, जो राजशेखर की बहुज्ञता का विस्तारक भाष्य ही है।

भास्करोदय– इस महानाटक के प्रणेता यतीन्द्र विमल चौधुरी का जन्म वर्तमान बांग्लादेश में कर्णफुली नदी के तट पर स्थित चिटबड़ागाव जिले के कधुर्खिल गावं में 2 जनवरी, 1908 ई. में हुआ था। उनके पिता रसिक चन्द्र चौधुरी और माता नयनतारा देवी थी।

भास्करोदय में पन्द्रह अंक हैं। 1960 ई. में रवीन्द्रठाकुर की शतवर्षिकी के अवसर पर इसका प्रणयन और मंचन सारे भारत में ही नहीं वरन् विदेशों में भी हुआ। कवि यतीन्द्र को गौरव था कि हनुमन्नाटक जैसे महानाटक के पश्चात् वे पहले नाटककार हैं, जिनकी लेखनी महानाटक लिखने में व्यापृत हुई है। इसके पहले ही उन्होंने दो और महानाटक आनन्दराध तथा दीनदास– रघुनाथ लिखे थे। भास्कररोदय चरितात्मक नाटक है।

कथावस्तु–

प्रथम अंक की दृश्यस्थली कलकत्ता के उपनगर जोडासोंको में महर्षि देवेन्द्रनाथ का भवन है। 1854 ई. में अखण्डानन्द जगत में विचरण करने वाले महर्षि देवेन्द्रनाथ के कोषाध्यक्ष ने कहा कि आपके द्वारा संचालित व्यवसाय–प्रतिष्ठान के बैठ जाने से चौदह हजार मुद्रा देना है। इन्हें धन न देने पर शेरिफ के पास जाना पड़ा।

द्वितीय अंक की दृश्यस्थली कलकत्ते में पाथरिया घाटामण्डल में प्रसन्नकुमार ठाकुर का घर है। 1954 ई. में देवेन्द्रनाथ के चाचा प्रसन्न कुमार, ठाकुर देवेन्द्र से

कहते हैं कि लौकिक व्यवहार अपनाओ। उनका मत था कि पिता द्वारकानाथ के लाखों रुपये का ऋण चुकता करना व्यर्थ है। चौदह हजार रुपये का ऋण बिहार या उत्कल प्रान्त की भूमि बेचकर दे डालो। देवेन्द्र ने कहा कि वह भूमि मेरी नहीं रह गई है। असत्य पथ पर चलते हुए मैं जीवन–यापन नहीं करना चाहता हूं। मेरे लिए सत्य ही जीवन है।

तृतीय अंक में जोडासोंको का महर्षि–भवन दृश्यस्थली है। वे खिड़की से देखते हैं कि सारी प्रकृति ही मैत्री भाव से मुझे देख रही है।

चतुर्थ अंक में बोलपुर का सप्तपर्णद्रुम दृश्य–स्थली है। 1872 ई. में देवेन्द्र रवीन्द्र के साथ बोलपुर गये। वहां उग्रू और झम्रू कलकत्ते का वर्णन है।

पंचम अंक में रवीन्द्र परिवार की, विशेषतः स्त्रियों की, शैक्षणिक प्रवृति और सुसंस्कृति का संवादात्मक परिचय है।

षष्ठ अंक में चैत्र मेला के एकादश अधिवेशन में रवीन्द्र ने दिल्ली दरबार के विषय में कुछ कहा।

सप्तम अंक में रवीन्द्र परिवार बंगभाषा में भारती पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ करता है।

अष्टम अंक में रवीन्द्र की भेंट कविवर बिहारी लाल से होती है।

नवम अंक में 1879 ई. में रवीन्द्र लन्दन में डॉ. स्काट के घर में रह कर विद्यार्थी जीवन बिताते हैं। वे उस परिवार में घुलमिल जाते हैं। श्रीमती स्कॉट में वे अपनी ही माता के दर्शन करते हैं।

दशम अंक में 20 वर्षीय रवीन्द्र पुनः भारत में हैं।

एकादश अंक – 1882 ई. में कलकत्ते में रमेशचन्द्र दत्त के घर पर रवीन्द्र और बंकिमचन्द्र हैं।

द्वादश अंक में 1882 ई. में रवीन्द्र ज्योतिरिन्द्रनाथ के घर पर है। उन्होंने प्रभात–संगीत की रचना पूरी कर ली थी।

त्रयोदश अंक में 1883 ई. में रवीन्द्र की काव्य–रचना प्रकृति–प्रतिशोध का परिचय है।

चतुर्दश अंक में महर्षि–भवन का दृश्य है। 1886 ई. में ज्ञानदानन्दिनी ने बालक नामक पत्रिका का प्रकाशन किया।

पंचदश अंक में 1886 ई. में महर्षि देवेन्द्र का चूचूडा का भवन दृश्य है।

विवेकानन्दविजयम् महानाटक :–

विवेकानन्दविजयम् महानाटक के प्रणेता डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर नागपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्राचार्य और विभागाध्यक्ष रहे हैं। आपने नागपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. की उपाधि ली है। डॉ. वर्णेकर नितान्त कर्मठ और उत्साही मनीषी थे। वर्णकर ने संस्कृत साहित्य का संवर्धन करने के लिए अगणित लेख संस्कृत में लिखे हैं।

डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर कृत विवेकानन्द विजयम् नाटक उनकी सबसे विख्यात कृति है। यह चरितात्मक नाटक है। लेखक ने इसे महानाटक कहा है, क्योंकि इसमें अंकों की संख्या दस है और इसका चरितनायक महापुरुष है– ''महापुरुषविषयत्वाच्च नाटकस्यास्य महानाटकम्''।

छत्रपति शिवराज के समान ही विवेकानन्द भी बाल्यकाल से ही श्री वर्णेकर के लिए श्रद्धा के पात्र रहे हैं। श्री वर्णेकर जब 10वीं कक्षा में थे उस समय विवेकानन्द के मराठी भाषा में लिखे ग्रन्थों का अध्ययन किया था। उसी समय श्री वर्णेकर ने विवेकानन्द का अंग्रेजी भाषा में चरित्र भी पढ़ा।

श्री वर्णेकर ने 'रामकृष्ण परमहंसीयम्' खण्ड काव्य मन्दाक्रान्ता वृत्त में रचा। इस खण्ड काव्य को एक बार मुम्बई में श्री वर्णेकर ने विद्वत्सभा में सुनाया था। उस सभा में एक संस्कृत मनीषी ने भी वर्णेकर से कहा– 'विवेकानन्दस्य अभिनयं कर्तुम् आंकाक्षामि भवान् विवेकानन्द विसयकं संस्कृत नाटकं लिखत'। उसी दिन से श्री वर्णेकर के मन में इस प्रकार का नाटक लिखने का विचार पैदा हुआ। लेखक ने विवेकानन्द मन्दिर कन्याकुमारी क्षेत्र में देखा, जिस दिन वहां विवेकानन्द जन्मदिन महोत्सव था। श्री वर्णेकर को वहीं से महानाटक लिखने की प्रेरणा मिली। केवल दस दिनों में चार अंक लिखे गये। कुछ व्यवधान के अनन्तर आषाढ़ शुक्ल एकादशी को यह महानाटक पुरा हुआ। इस महानाटक का अभिनय 15 जनवरी, 1972 को हुआ।

प्रथम अंक – महाविद्यालय के सामने सड़क पर रहमान, विलियम और वामाचरण नामक तीन महाविद्यालय के छात्र श्रृंगार–रस पर हंस–हंस कर वार्तालाप कर रहे हैं। उसी समय रहमान गंगा में स्नान करती हुई पूर्वपरिचित किसी विधवा

के प्रति अपने प्रेम का निवेदन करता है। उसी समय वह 'शेफालिका' नामवाली विधवा हाथ में पुष्प–पात्र को लिए काली देवी की पूजा करने के लिए जाती हुई वहां आती है। महाविद्यालय शुल्क को देने के लिए अचानक वामचारण के निकलते ही रहमान और विलियम उसे अकेली देखकर कामुकता का प्रदर्शन करते हैं। इसी बीच महाविद्यालयीय वाद–विवाद प्रतियोगिता में उत्कृष्ट व्याख्यान के कारण जयघोषपूर्वक लाये हुए नरेन्द्र (विवेकानन्द) ने किसी अबला की आक्रोशपूर्ण ध्वनि को सुना, क्योंकि रहमान और विलियम किसी अबला को पीड़ित कर रहे थे और नरेन्द्र दोनों को थप्पड़ मारकर डांटता है। नरेन्द्र की शक्ति से भयभीत दोनों उस युवती से क्षमा याचना करके निकल जाते हैं। वह युवती रामकृष्ण परमहंस नामक किसी महात्मा के प्रति भक्तिभावना रखती है– यह जानकर नरेन्द्र ने कहा– तथाकथित साधुओं से दूर रहना चाहिए 'सर्वथा साधुब्रुवाणां सम्पर्कः परिहरणीयः'। उस बाल विधवा की दरिद्रता एवं दीनता जानकर नरेन्द्र बहुत दुःखी होता है।

द्वितीय अंक – 'प्रतियोग' के प्रवर्तक तथा दम्भी होलिकाचार्य के जन्म दिन के लिए गोपालदास, शम्भुनाथ आदि भक्त लोग उसके आश्रम में एकत्र होकर प्रतियोग गीत गाते हैं। उसी समय किसी अस्पृश्य जाति के अन्धे को अन्दर प्रवेश करता देखकर होलिकाचार्य उसे बाहर निकालने का आदेश देते हैं। शम्भुनाथ के द्वारा अत्यधिक प्रताड़ित वह अन्धा मार्ग में गिर जाता है। इसी समय आये नरेन्द्र ने उसकी अनेक प्रकार से सेवा की। उसके मुख से 'रामकृष्ण परमहंस' का नाम सुनकर नरेन्द्र सोचता है– 'सम्भवतः वह कोई परम पवित्र सत्पुरुष है, मैं भी परमात्मा विषयक स्वयं की प्रज्वलित जिज्ञासा के शमन हेतु उनके पास जाऊंगा।' यह सोचते हुए अन्धे को रामकृष्ण परमहंस के आश्रम का मार्ग दिखाने के लिए जाते हैं।

तृतीय अंक – सायंकाल होने पर मन्दिर में पूजा करती हुई नरेन्द्र की माता भुवनेश्वरी नरेन्द्र के लिए वधू की कामना रखती हुई सोचती है तथा उसके आने की लम्बी प्रतीक्षा करती है। घर की दासी लक्ष्मी कमरे में ग्रन्थों के बीच ध्यानावस्थित नरेन्द्र को उसे बताती है। उसी समय नरेन्द्र के पिता विश्वनाथ ने किसी सज्जन के मुख से सुने अद्‌भुत अनुभाव रखने वाले श्री रामकृष्ण परमहंस के चरित्र को बताया। कलकत्तावासियों के महान् उस साधु को प्राचार्य हेस्टी महोदय के कथन को स्मरण करता हुआ वह नरेन्द्र उनके दर्शन करना चाहता है। अचानक किसी आह्‌वान को

सुनता हुआ सा वह मग्न हो जाता है। माता द्वारा जप किए गए शिव नाम से वह समाश्वस्त होता है और 'शीघ्रमेव द्रक्ष्यामि तमहं रामकृष्णं परमहंसेम्' निश्चय करता है।

चतुर्थ अंक – दक्षिणेश्वर काली–मन्दिर में स्तोत्र पढ़ती हुई शेफालिका और वहीं पर 'श्रीरामकृष्ण–स्तोत्र' को गाते हुए देवी प्रसाद नामक अन्धे को देखता है। नरेन्द्र से उपकृत वे दोनों उसकी प्रशंसा करते हैं। उसी समय सज्ज्नों के साथ रामकृष्णाश्रम को जाते हुए नरेन्द्र को जानकर वे दोनों वहीं जाते हैं। यहीं विष्कम्भक पूरा होता है।

कुछ भावुक पुरुषों से घिरे कक्ष में बैठे रामकृष्ण जगत् की माता (काली) के स्तोत्र को भावाकुल होकर गा रहे हैं और अन्त में– 'आगच्छत' (आओ) इत्यादि जोर से व्याकुल हो कह उठते हैं। उसी समय नरेन्द्र अपने सुहृदों सहित वहां आता है। भक्तों के साथ रामकृष्ण परमहंस परमेश्वर विषयक वार्तालाप करते हैं। उनके विषय प्रतिपादन की कुशलता से नरेन्द्र प्रसन्न होता है। वह भी 'क्या आप ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते हैं?' जैसे प्रश्नों से अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है। नरेन्द्र के दर्शन मात्र से प्रसन्न श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा – 'वत्स नरेन्द्र! प्रपंच में ही निरत लोगों की ध्वनि से मेरे कान मानों जल गए हैं। अतः भाव से परिपूर्ण गीत को सुनकर मेरे कानों के दाह को शान्त करो।' नरेन्द्र दो गीत सुनाता है। रामकृष्ण परमहंस समाधि में लीन हो जाते हैं और उसके बाद शारदा देवी आदि समस्त प्रमुखों को बाहर भेजकर श्री रामकृष्ण नरेन्द्र के प्रति अपने वात्सल्य को प्रकट करते हैं।

पंचम अंक – उपवन में विलियम, रहमान और वामाचरण धीरे–धीरे वार्तालाप कर रहे हैं। उसी समय प्रसंगवश नरेन्द्र संन्यासी होकर भ्रमण करने के लिए निकल चुका है– ऐसा वामाचरण कहता है। विलियम और रहमान स्वयं के शाप को ही इसका कारण मानते हुए कहते हैं कि हमारे शाप से ही उसकी (विवेकानन्द) यह स्थिति हुई है। इस वार्तालाप के साथ विष्कम्भक समाप्त होता है।

उसी समय दण्ड, कमण्डलुधारी पीले वस्त्र को पहने हुए नरेन्द्र अपने गुरू के गुणों की महिमा को गाता हुआ प्रवेश करता है। मार्ग में कोई मलवाह उसको दृष्टिगोचर होता है। मनोगत छुआछूत के भेदभाव को दूर करने के लिए उसकी (मलवाह) चिलम से वह धूम्रपान करता है और उसके पश्चात् श्रेष्ठ गुरू के गुणों को स्मरण करने में निमग्न विवेकानन्द के सामने कोई स्थानकाधिकारी नवयुवक आता

है। वह तरूण नरेन्द्र (विवेकानन्द) को लोकोद्धारक संन्यासी जानकर स्वयं उनके शिष्य के रूप में प्रस्तुत होता है। तदुपरान्त पुरोहित और मौलवी प्रवेश करते हैं। विवेकानन्द समुद्धत पुरोहित अभिमान को दूर करने हेतु धर्म के रहस्यभूत चार सूत्रों (कर्म, योग, भक्ति, ज्ञान) का उपदेश देते हैं। किन्तु विनम्र मौलवी संन्यासी नरेन्द्र को आदर सहित भोजन के लिए निमन्त्रण देता है। नरेन्द्र उस श्रद्धालु मौलवी के निमन्त्रण को स्वीकार लेते हैं। उसके बाद मार्ग में जाते हुए दुर्बल युवकों को रोककर संन्यासी नरेन्द्र ने कहा – ''अरे! किम् एवं यौवनेऽपि दौर्बल्यम्....।'' अर्थात् उनकी भलाई का उन्हें उपदेश दिया। सभी युवक उनकी शिष्यता ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात् गुरू के गुणों का स्मरण करते हुए नरेन्द्र भारत भ्रमण करते हैं।

षष्ठ अंक – राजस्थान के किसी राजमहल में शासन–सचिव आदि विवेकानन्द के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं। वहां राजा मानसिंह शिकारी के वेश में प्रवेश करता है। राजमहल में आने पर भी विवेकानन्द ने नर्तकी के नृत्य को देखना अनुचित माना और वहां से किसी अन्य प्रकोष्ठ में चले गऐ– यह जानकर नर्तकी दुःखी होती है। अप्रत्यक्ष रूप में उसके भक्ति–गीत को सुनकर प्रसन्न हुए स्वामी विवेकानन्द वहां प्रवेश करके गायिका की वन्दना करते हैं। राजा मानसिंह को छोड़कर सभी उनका सम्मान करते हैं। वह तो उपहासपूर्वक विवेकानन्द से पूछता है– ''हे स्वामिन्। आप तो पूर्वी और पश्चिमी दोनों विद्याओं में कुशल हैं, फिर भिक्षा के लिए क्यों घूमते हो? विवेकानन्द ने प्रतिप्रश्न करते हुए पूछा– ''आप राजकार्यों को छोड़कर शिकार में अपना समय व्यर्थ क्यों गंवाते हैं?'' यह सुनकर विवेकानन्द कहते हैं– ''आप मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतारों में से कौन–से हैं? थोड़ी–सी रूकावट के बाद नेपथ्य में स्थित रानी ने विनय सहित पूछा– '' महिलाओं का आदर्श कौन है?'' स्वामी विवेकानन्द ने कहा– महापतिव्रता सीतादेवी, झांसी की रानी तेजस्विनी लक्ष्मीबाई महिलाओं की आदर्श हैं। राजा मानसिंह मूर्तिपूजा में अविश्वास को थूकने का आदेश देकर मूर्तिपूजा के रहस्य का प्रतिपादन किया। अन्त में राजा के श्रद्धा सहित प्रार्थना करने पर कि ''आप द्वारा ईप्सित और हमारे द्वारा देने योग्य को बताएं।'' स्वामी विवेकानन्द कहते हैं– ''शिकागो नगर में विश्वधर्म सम्मेलन में हिन्दुधर्म के वास्तविक स्वरूप की उद्घोषणा करनी चाहिए– यह मेरी इच्छा है।'' सभी दूसरे देश की यात्रा हेतु अपने अलंकारों को उन्हें समर्पित करते हैं।

सप्तम अंक – कन्याकुमारी के मन्दिर के पास कुछ मछुआरों के बालक सागर–गीत – ''होऽऽ होऽऽऽ होऽऽऽऽ चल चल सागरम्...।'' को गाते हुए नाच रहे हैं, उसी समय प्रक्षुब्ध समुद्र में नाव को चलाने हेतु तैयार नाविक को उसकी पत्नी बलपूर्वक रोकती है। श्रीपादशिला पर कोई युवा संन्यासी जो तीन दिनों से समाधि में निमग्न रहता है, उसको लाने के लिए क्षुब्ध सागर में भी नाव को प्रवाहित करूंगा– इस प्रकार नाविक कह रहा है। यहीं प्रवेशक समाप्त होता है।

तत्पश्चात् श्रीपादशिला पर समाधि से उठे हुए विवेकानन्द ने कहा– ''मेरे समक्ष स्थित भारत का उत्थान करना चाहिए– यह आदेश ध्यानावस्था में मुझे प्राप्त हुआ है। मातृभूमि को यहां (श्रीपादशिला) से सम्पूर्ण रूप में चिदानन्दमयी महाविग्रहवती देवी के समान प्रतिभा रूपी नेत्रों से देख रहा हूं।'' चौरासी श्लोकों से भारतभूमि का परम भक्ति के साथ बार–बार वर्णन करके, ''श्रीरामकृष्ण परमहंस के दिव्य आदेशानुसार सात महासागरों का उल्लंघन कर आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण दीपक को जलाने हेतु दूसरे देश को जाता हूं'' यह कहते हुए धीवर द्वारा लाई गई नाव की ओर जाते हैं।

अष्टम अंक – अमेरिका के शिकांगो नगर में कहीं एक बड़े बगीचे में अमेरिकी युवती बालकों को नृत्य का उपदेश दे रही है। वहां बालक पुष्पों के गीत को गाते हुए नाच रहे हैं। अचानक गेरूए वस्त्रों को धारण करने वाले अपरिचित पुरुष को देखकर भयभीत हुए बच्चों की ओर, लोगों के उपहास से पीड़ित और थके हुए विवेकानन्द आते हैं। बालक पुष्पों से उनको पीड़ित करते हैं। उससे क्रोधित उस युवती को लक्ष्य करके ''यहां पत्थर के टुकड़े नहीं हैं, इसलिए फूलों से ही पीट रहे हैं।'' इस प्रकार उनके निष्कपट वचनों को सुनकर प्रसन्न विवेकानन्द ने कहा– ''निश्चय ही भगवती कोलम्बिया देवी ने परम वात्सल्य से अपने पुत्रों के हाथों से भरतभू के मुझ पुत्र के लिए यह कृपा रूपी प्रसाद भेंट किया है।'' तदनन्तर विवेकानन्द ने उस युवती से स्व–परिचय देकर विश्वधर्म–सम्मेलन विषयक जानकारी चाही है। उसने इस सम्मेलन विषयक जानकारी से स्वयं को अनभिज्ञ बताया। उसी समय श्रीमती हेल् नाम की महिला आती है। विश्वधर्म सम्मेलन के लिए भारत से आए विवेकानन्द को जानकर उसने पूछा– ''क्या आप किसी हिन्दू–धर्म के संगठन का प्रमाण–पत्र प्रतिनिधित्व के लिए साथ लाए हैं?'' विवेकानन्द ने अपना सम्पूर्ण

यात्रा–वृतान्त उसे निवेदित करके बोस्टन नगर में प्राध्यापक राइट महोदय द्वारा प्रदत्त परिचय–पत्र को दिखाया। श्रीमती हेल् महोदया विवेकानन्द की भूख–प्यास से उत्पन्न आकुलता को जानकर उन्हें अपने घर रहने के लिए ले जाती है। ''यह पूर्णरूप से गुरू की कृपा ही है, जो मैं इसके रूप में स्थित कोलम्बिया देवी द्वारा पुत्र बना लिया गया हूं।'' यह कहकर विवेकानन्द दोनों बच्चों को कन्धों पर उठाए हुए उसका (श्रीमती हेल् का) अनुसरण करते हैं।

नवम अंक – विश्वधर्म सम्मेलन में उपस्थित विवेकानन्द ने थोड़ी सी कायरता का अनुभव करके गुरूदेव से प्रार्थना करते हुए कहा – ''हे गुरूदेव! आपकी प्रतिभा का कण मात्र मुझे प्रदान कीजिए''। इसके अनन्तर उन्होंने ज्यों ही भाषण के प्रारम्भ में कहा– ''अमेरिका वासियों बहिनों और भाइयों!'' त्यों ही श्रोताओं में जोरदार तालिकाओं की ध्वनि गूंज उठी। कुछ श्रोताओं ने उनकी मधुर आवाज की प्रशंसा की। कुछ असहिष्णुओं में प्रतिकूल भाव को देखकर विवेकानन्द ने कूप–मण्डूक दृष्टान्त से क्षुद्र तुच्छता को छोड़ने का उपदेश दिया। अपने व्याख्यान में वेदों की अनादिता, आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म का अस्तित्व, ज्ञान से ही मुक्ति, भक्तियोग व कर्मयोग का महत्त्व, मूर्तिपूजा का रहस्य, सब धर्मों के प्रति आदरभाव, धर्मान्तरण का अनौचित्य इत्यादि विषयों को आधार बनाकर हिन्दु–धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। बीच–बीच में कुछ श्रोता प्रश्नों को पूछते हैं, तो कुछ उनके विषय के प्रतिपादन की कुशलता को सराहते हैं। अन्त में विवेकानन्द अपना सन्देश इस प्रकार देते हैं।

साहाय्यं न तु संघर्षः स्वीकृतिर्न तिरस्कृतिः।
समता शन्तिरेवास्तु विग्रहो न कदाचन।।

(हम परस्पर सहायता करें, न कि संघर्ष। एक दूसरे के विचारों के प्रति स्वीकृति हो, न कि तिरस्कार। सर्वत्र समता और शान्ति ही हो, कभी भी विग्रह (कलह) न हो।)

दशम अंक – पुस्तकालय में निश्चितकालीन वाचन में मग्न लोकमान्य तिलक महोदय ने अचानक विश्वधर्म सम्मेलन विषयक अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए पाश्चात्य देश के साहित्य को लाने के लिए नरसोपान्त नामक अपने शिष्य को

आदेश दिया। तभी वे अमेरिकी समाचार–पत्र में 'विवेकानन्द द्वारा विश्वधर्म सम्मेलन में हिन्दुधर्म का प्रतिनिधित्व किया गया'– यह जानकर परम सन्तोष को प्रकट करते हैं। नरसोपन्त ने दूसरे समाचार–पत्र में विवेकानन्द के आगमन का समाचार पढ़ा। अचानक नेपथ्य में पणवानक व गोमुख वाद्ययन्त्रों की तेज आवाज और जयघोष होती है और उसके बाद कलकत्ता में अपनी कुटिया में चार साथी संन्यासियों से घिरे थके विवेकानन्द मातृभूमि की दूरवस्था को याद करते हुए रूदन करते हैं। उनके मित्र उन्हें समाश्वासन देते हैं। ''दरिद्रनारायणों की सेवा में ही यह शरीर गिरे''– इस प्रकार विवेकानन्द ने ज्यों ही कहा, वहां पाश्चात्य युवती प्रवेश करती है। इसका नाम मार्गरेट नोबल है, यह मेरी धर्मकन्या है, यह परिचय विवेकानन्द देते हैं। तदनन्तर क्रमशः भुवनेश्वरी, लक्ष्मी, वामाचरण, शेफालिका और देवी प्रसाद यथा समय प्रवेश करते हैं। सब स्वजनों के आने से प्रसन्न विवेकानन्द श्रीरामकृष्ण परमहंस के मंगल जन्म–दिवस पर शारदादेवी का अभिवादन करने सपरिवार जाते हैं। प्रणाम आदि की औपचारिकता के बाद ''मातः! आंग्लदेश से आई यह धर्मकन्या आपके लिए निवेदित करता हूं।'' विवेकानन्द के ऐसा कहते ही शारदादेवी ने कहा – तुम्हारे द्वारा यह पुत्री मुझे निवेदिता होने से आज से इसका नाम निवेदिता ही होगा। तदनन्तर ''एकं ब्रह्म द्वयं तत्... ... धर्मसल्लक्षणानाम्।।'' – इस भरत वाक्य से महानाटक सम्पन्न होता है।

नलविजय – इस महानाटक के प्रणेता रामशास्त्री कर्नाटक में चिरकाल से विद्वानों के द्वारा सुशोभित मण्डिकल नामक नगर के निवासी थे। इसी नगर के नाम पर इनका नाम मण्डिकल रामशास्त्री है। इनके पिता वेकंट सुष्बार्य सुधीमणि श्रोत्रिय ब्रह्मवादी थे। राम ने बालावस्था में ही मैसूर नगर में आकर सोलह वर्ष की अवस्था तक वेद पढ़ा और 30 वर्ष की अवस्था तक तर्क, व्याकरण, साहित्य आदि का अध्ययन करके अद्वैत–वेदान्त में विशेषज्ञता प्राप्त की। वे महाराज कृष्णराज के सभापण्डित थे।

राम ने नलवियज नाटक की रचना वृद्धावस्था में की। उसके पूर्व उन्होंने आर्यधर्म प्रकाशिका आदि ग्रन्थों को लिखा था। नलविजय का प्रथम अभिनय कपिलातीर पर स्थित श्रीकण्ठेश्वर की यात्रा समाप्त करके आये हुए महाजनों के प्रीत्यर्थ आयोजित हुआ था। महाराज कृष्णराज के आस्थान–प्रमुख और महाराज के

मामा कान्तराज ने नाटक के अभिनय के लिए आदेश दिया था। नलवियज परम्परानुसारी नाटक है। लेखक ने स्वयं अपनी परम्परा–भक्ति की चर्चा की है। 'नाटकेऽस्मिन् तत्र तत्र संवाद–मुद्रया, निदर्शन–मुद्रया, निषेधमुद्रया, प्रशंसनादिमुद्रया च भावक–भावानुभाव्यास्ते ते रसभावादयः तास्ता नीतयश्च प्राकाशिषत।'

दस अंकों के इस रूपक को महानाटक भी कहते हैं। इसका प्रसिद्ध नाम भैमी–परिणय है। इसमें नलदमयन्ती के विवाह, वियोग और पुनर्मिलन की सुप्रसिद्ध, कथा सरस ढंग से प्रस्तुत की गई है।

ग. हनुमन्नाटक का सामान्य परिचय

हनुमन्नाटक – 'हनुमन्नाटक' के प्रणेता महाकवि श्री हनुमत् हैं। श्री दामोदर मिश्र के द्वारा इस नाटक का संकलन किया गया है, इस नाटक के सम्प्रति दो संस्करण उपलब्ध हैं। एक 'महानाटक' नाम से 09 अंकों का नाटक, श्री मधुसूदन मिश्र द्वारा संकलित है, जो बंगाल में प्रचलित है। दूसरा 'हनुमन्नाटक' नाम से 24 अंकों का नाटक जो श्री दामोदर मिश्र द्वारा संकलित है, जो महाराष्ट्र में प्रचलित है।

संस्कृत के नाटक–साहित्य में हनुमन्नाटक अपना विशेष महत्त्व रखता है। यह दीघ्र विस्तारी नाटक है, जो प्रायेण पद्यों में ही विरचित है इसका गद्य भाग अत्यन्त स्वल्प है। इसमें बहुत से ज्ञात–अज्ञात रामचरित्र पर आधारित नाटकों से विषय वस्तु ली गई है। संवाद वस्तुतः बहुत कम हैं। नाटक में विदूषक का सर्वथा अभाव है, प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं है और सूत्रधार का भी अभाव है। विष्कम्भक का भी अभाव है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि नाट्यसिद्धान्त की दृष्टि से यह नाटक की कोटि में नहीं आ सकता, पात्रों की संख्या विस्तृत है।

जनश्रुति – ऐसी जनश्रुति है कि कपिपुंगव हनुमान् ने इस नाटक की रचना करके पहाड़ के ढोकों पर खोद दिया था। जब वाल्मीकि मुनि ने उसे पढ़ा तो उन्होंने विचार किया कि यह अत्यन्त विशरूप से लिखा गया है। यदि यह ग्रन्थ जनता के नेत्र पटल के सम्मुख आ जायेगा तो उनकी बनाई हुई रामायण का आदर कम हो जाएगा। यह सोच कर उन्होंने वानराग्रगण्य से कह सुन कर उन शिलाओं को समुद्र में डलवा दिया। यहां दो सिद्धान्त हैं; एक के अनुसार राजा विक्रमादित्य ने उसे समुद्र में से निकलवा कर, मोम पर उसके वर्णों को मूद्रित करके प्रकट किया।

दूसरा सिद्धान्त है कि राजा भोज ने समुद्र में से उन शिलाओं को निकलवा कर, उस लुप्तप्राय ग्रन्थ का अपने सभापण्डित श्री दामोदर मिश्र द्वारा जीर्णोद्धार करा डाला।

हनुमन्नाटक का समय– डॉ. बूलर ने भोज का राज्याभिषेक समय ईस्वी सन् 1010 (विक्रम संवत 1066–1067) माना है। देखिए (Epigraphica Indica Vol. I Page 232) श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने भोज की राज्य प्राप्ति का काल ई. सन् 1010 मानकर, उनका 40 वर्षों तक अर्थात् सन् ई. 1050 (वि.सं. 1106) तक राज्य करना अनुमान किया है। श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ इनकी मृत्यु ई. सन् 1042 (वि.सं. 1099) और ई. सन् 1055 (वि.सं. 1112) के बीच मानते हैं।

इन्हीं के राज्यकाल में प्रसिद्ध यात्री अलबरूनी भारतवर्ष आया था। उसने लिखा है कि जिस समय ई. सन् 1030 (वि.सं. 1087) में भारतवर्ष सम्बन्धी पुस्तक लिखी गई उस समय धार और मालवा पर भोजदेव शासन करते थे (देखिए Prof. Sachan का अनुवाद, भाग 01 पृ. 191)। प्राकृत पिंगलव्याख्या के रचयिता लक्ष्मी नाथ ने ई. सन् 1600 के लगभग अपनी बनाई हुई व्याख्या में इनका उल्लेख किया है। अतः ये दामोदर मिश्र ई. सन् 1600 के पूर्व में हुए, ऐसा निश्चित हुआ। अब कवि–परम्परा से ये राजा भोज के समकालीन विख्यात हैं। यदि यह बात सत्य है कि दोनों कवि एक ही हैं, तब तो इनका समय ई. 11 शतक हो सकता है।

प्रस्तुत नाटक के सन्दर्भ ठीक करने वालों में दामोदर मिश्र एवं मधुसूदन मिश्र का नाम लिया जाता है। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है। दामोदर मिश्र और मधुसूदन मिश्र में कौन अधिक प्राचीन है– इसका निश्चय नहीं किया जा सकता; किन्तु इन दोनों व्यक्तियों में दामोदर मिश्र अधिक प्राचीन माने जाते हैं। मधुसूदन मिश्र के नाटक नौ अंकों में होने पर भी उसकी श्लोक संख्या 791 है एवं दामोदर मिश्र के 14 अंक में केवल 579 श्लोक हैं। इन दोनों नाटकों में लगभग 300 श्लोक समान हैं। इस आधार पर भी दामोदर मिश्र ही प्राचीन प्रतीत होते हैं। अन्य नाटकों की तरह इसमें प्रवेशक, विष्कम्भक नहीं है, अंक विभाजन से इसका नाटकत्व है।

हनुमन्नाटक में कुल 14 अंक हैं सभी अंकों का पृथक्–पृथक् नामकरण किया है। अंकों में श्रीराम के जीवन चरित्र के विषय में वर्णन है। प्रथम अंक– जानकी स्वयंवर, द्वितीय– रामजानकी विलास, तृतीय– मारीच आगमन, चतुर्थ– सीताहरण, पंचम– बालिवध, षष्ठ– हनुमद्विजय, सप्तम– सेतुबन्धन, अष्टम– अंगदाधिक्षेपण, नवम– मन्त्रिवाक्य, दशम– रावणप्रपंच, एकादश– कुम्भकर्णवध, द्वादश– मेघनादवध, त्रयोदश– लक्ष्मणशक्ति भेद, चतुर्दश– श्रीराम विजय नाम से अंकों का विभाजन है।

प्रथम अध्याय

(क) नाटककार के विषय में जनश्रुतियां एवं व्यक्तित्व –

जन श्रुतियां :– जनश्रुतियों में विक्रमादित्य व भोज के दो सिद्धान्तों का वर्णन पूर्व में दिया जा चुका है इनके अतिरिक्त और भी है यथा

रचितमनिल पुत्रेणाथा वाल्मीकिनाऽब्धौ
निहितममृतबुद्धया प्राङ्महानाटकं यत्।
सुमतिनृपति भोजनोद् धृतं तत्क्रमेण
ग्रथितमवतु विश्वं मिश्रदामोदरेण (हनुमन्नाटक 14.93)

उपर्युक्त श्लोक की टीका करते हुए मिश्र मोहनदास अपनी दीपिका में लिखते हैं– अत्रेयं कथा – पूर्वमेतेन नरवरटङ्केगिरि – शिलासु विलिखितं तन्तु वाल्मीकिना तदेतस्यातिमधुरत्वमा – कलय्य रामायणप्रचाराभावशङ्कया हनुमान् प्रथितः त्वमेतत् समुद्रे निधेहि इति 'तथेति'। तेनाऽब्धौ प्रापितं तदवतारेण भोजेन सुमतिना जलज्ञानैरूद्धृतमिति, जनश्रुति में इस के जीर्णोद्धारकर्त्ता का नाम कालिदास भी बतलाया जाता है किन्तु उपरोक्त टीकाकार के मत से यह ठीक नहीं जँचता।

श्री बल्लालविरचित 'भोज प्रबन्ध' (श्री जीवानन्द संस्करण पृष्ठ 253 में एक कथा आती है :–

एकदा नर्मदार्या महाह्रदे जालिकैरेव शिलाखण्ड ईषद् भ्रंशिताक्षरः क्वचिद् दृष्टः तैश्च परिचिन्तितम् लिखितमिव किञ्चिद्भाति, नूनामिदं राजनिकटं नेयम्। इति बुद्धया भोजसदसि समानीतम्। तदाकर्ण्य भोजः प्राहः – पूर्वेभगवता हनुमता श्रीमद्रामायणं कृतं, तदत्र ह्रदे प्रक्षेवितमिति श्रुतमस्ति! ततः किमिदं लिखितमित्यवश्यं विचार्य्यमिति लिपिज्ञानं कार्यम्। जतुपरीक्षयाऽक्षराणि परिज्ञाय पठतु। तत्र चरणद्वयमानुपूर्व्या लब्धम्–

अयि! खलु विषमः पुराकृतानां
भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः।

ततो भोजः कालिदासं प्राह – सुकवे! त्वं कविह्रदयं पठ। स आह

शिवशिरसि शिरांसि यानि रेजुः

शिव! शिव! तानि लुठन्ति गृध्रपादे।
अयि! खलु विषमः पुराकृतानां
भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः।।

ततस्तस्य शिलाखण्डस्य पूर्वपुटे जतुशोधनेन कालिदासः पठति। तमेव दृष्ट्वा भृशं तुतोष।

भोज कालिदास नामक हिन्दी दन्त कथासंग्रह में उपरोक्त कथा का अनुवाद इस प्रकार किया गया है।

एक समय नर्मदा नदी के महाकुण्ड में जाल डालने वालों ने पत्थर का एक टुकड़ा पाया। तब उस पर कुछ अक्षर खुदे हुए थे। उन्होंने विचार किया कि यह शिलाखण्ड राजा को देना चाहिए। यह निर्णय कर, राज दरबार में लाकर, राजा को वह शिलाखण्ड दिया। उसे देखकर राजा ने विचार किया कि हनुमान् जी ने रामायण को शिलाखण्डों पर लिखा था वह किसी कुण्ड में डाल दिया गया था– ऐसा सुनते चले आये हैं। यह सोच कर, उस शिलाखण्ड को अपने हाथ में लेकर, अपने विचार से श्लोक के उत्तरार्द्ध को राजा ने यों पढ़ा अयि! खलु विषमः ..... कर्मणां विपाकः। फिर अपने दरबारी पण्डितों से इसे पूरा करने के लिए कहा। सब लोगों ने अपनी रूचि के अनुसार पूर्ति की तब कालिदास ने यों पूरा किया – शिवं शिरसि शिरांसि ..... कर्मणां विपाकः। फिर उस शिला पर लिखा हुआ पूर्वार्द्ध–श्लोक लाख से शोधन किया गया तो वहीं निकला जो कालिदास ने पढ़ा था।

'प्रबन्धचिन्तामणी' में यही कथा दूसरे रूप में आती है। उसके अनुसार समुद्र–जल में डूबे हुए रामेश्वर मन्दिर की प्रशस्ति के 'अयि! खलु विषयः ..... कर्मणा विपाकः' इस श्लोकार्द्ध की पूर्ति तिलकमञ्जरी' के कर्त्ता जैनकवि धनपाल ने यों की थीं – हर शिरसि शिरांशि ..... गृधपादैः।'' इसके बाद जब गोताखोरों द्वारा उस मन्दिर की प्रशस्ति का फिर से अनुसन्धान कराया गया तो उक्त श्लोक का उत्तरार्द्ध ठीक यही निकला। कुछ परिवर्तन (अर्थात् कवि के संन्यास लेने की प्रतिज्ञा) के साथ यह कथा निर्णयसागर प्रेस द्वारा प्रकाशित तिलक मञ्जरी की भूमिका पृष्ठ सं. 07 में मिलती है।

यह पुष्पिताग्रा हनुमन्नाटक (14.49) और महनाटक (9.97) में मिलती है।

यह नाटक अवश्य जल में से निकाला गया, इसमें कोई सन्देह नहीं किंवदन्ती में इतना तथ्य अवश्य है। चाहे वह नाटक किसी मन्दिर की दीवारों की प्रस्तर–इष्टिका पर अंकित रहा हो, जो कालान्तर में ध्वस्त हो अपने समीप के कुण्ड में गिर पड़ा हो, या संस्कृत–साहित्य–वारिधि में प्रचार न हो सकने की वजह से डूब गया हो, जिसे संस्कृत साहित्य के उत्थानकर्त्ता प्रसिद्ध परमार वंशीय शासक भोज ने अपने आश्रित साहित्य मर्मज्ञ राजकविरूपी गोताखोरों द्वारा उद्धार कराया हो।

कवि के व्यक्तित्व के विषय में रामायण के 'किष्किन्धा काण्ड' में विस्तारपूर्वक वर्णन है यथा श्रीराम का हनुमान् जी से मिलन, श्री राम को सुग्रीव से परिचय करवाना, तारा को समझना, सुग्रीव के अभिषेक के लिए श्री रामचन्द्रजी से किष्किन्धा में पधारने की प्रार्थना करना, नील (बन्दर) को वानर सैनिकों को एकत्र करने का आदेश, सुग्रीव को समझाना, भेदनीति द्वारा वानरों को अपने पक्ष में करके अङ्गद को अपने साथ चलने के लिए समझाना, हनुमान जी का समुद्र लांघना, वेगपूर्वक छलांग मारने के लिए महेन्द्र पर्वत पर चढ़ना –

''यथा विजृम्भ सिंहो विवृते गिरिगह्वरे।

मारूतस्यौरसः पुत्रस्तथा सम्प्रति जृम्भते।'' (वाल्मीकीय रामायण 67.6)

जैसे पर्वत की विस्तृत वन्दना में सिंह अंगड़ाई लेता है उसी प्रकार वायु देवता के औरस पुत्र (हनुमान्) ने उस समय अपने शरीर को अंगड़ाई लेकर बढ़ाया। हनुमान् द्वारा समुद्र को लांघना, मैनाक द्वारा स्वागत, लंका में पहुंचना, लंका में सीता की खोज करना, हनुमान् द्वारा पुनः पुष्पक विमान का दर्शन, अशोक वाटिका में प्रवेश, सीता जी से मिलना, अपना परिचय देना, अंगुठी देकर अपनी पहचान बताना, रावण को समझाना, हनुमान् का पुनः श्रीराम के पास पहुंचना।

रामायण में सुन्दर काण्ड तो सम्पूर्ण श्री हनुमान् जी को ही समर्पित है। युद्धकाण्ड में भी कवि का अनुपम वर्णन है। हनुमान् के द्वारा सेना को जाने की आज्ञा देना, वानर सेना का प्रस्थान, हनुमान् द्वारा अकम्पन का वध, निकुम्भ का वध, कवि के नेतृत्व में वानरों व निशाचरों का युद्ध, हनुमान् का युद्ध के समय सीता से मिलना व यह सन्देश श्रीराम को सुनाना, हनुमान् द्वारा ही लक्ष्मण के लिए संजीवनी बुंटी सहित पर्वत का लाना इत्यादि वर्णित है।

हनुमन्नाटकम् में भी कवि का विस्तारपूर्वक वर्णन रामायण की तरह ही उपलब्ध है।

(ख) महानाटकों का शास्त्रीय स्वरूप –

संस्कृत–काव्य–जगत् में काव्यों के प्रमुख रूप से ही दो भेद किये गये हैं – 1. दृश्य और 2. श्रव्य। जिन्हें अभिनयादि के रूप में देखा जाता, उन्हें दृश्य काव्य तथा जिन्हें कानों से सुना ही जाता है या फिर पढ़ा ही जाता है– वे श्रव्य काव्य कहे जाते हैं (दृश्यश्रव्यत्व भेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्)। इनमें दृश्य काव्य को अधिक रमणीय माना गया है। दृश्य काव्यों को 'रूपक' की संज्ञा दी गई है, क्योंकि इन काव्यों में नटादि पर रामादि के रूप का आरोप किया जाता है (तद्रूपारोपात्तु रूपकम्) ये रूपक दस प्रकार के होते हैं–

1. नाटक– इसमें प्रख्यात कथावस्तु होती है। धीरोदात्त नायक होता है। श्रृंगार या वीर रस में से कोई एक रस मुख्य होता है और शेष रस अंगी के रूप में विद्यमान होते हैं। इसमें पञ्चसन्धि का रहना अत्यावश्यक है। नाटक में पांच से दस अंक होते हैं। कैशिकी तथा सात्विकी वृत्ति में से कोई एक वृत्ति रहती हैं विश्वनाथ ने नाटक के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में वर्णन किया है। धनंजय ने भी नाटक के सम्बन्ध में दशरूपक नामक ग्रन्थ में विस्तार से वर्णन किया है।

2. प्रकरण– इसकी कथावस्तु कल्पित होती है। पंचसन्धियुक्तता आवश्यक है। मुख्य रस

श्रृंगार तथा नायक धीरप्रशान्त होता है। पांच से दस अंक होते हैं। कैशिकी वृत्ति रहना अनिवार्य है। विश्वनाथ के अनुसार ''भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्''।

3. भाण– इसमें धूर्त चरित विषयक कल्पित वस्तु, जो विभिन्न अवस्थाओं से गुजरती हो, उसका उल्लेख रहना अनिवार्य है। भाण एक अंक, कलावित् नटनायक एक ही पात्र की उक्ति– प्रत्युक्ति तथा वीर एवं श्रृंगार रसों से युक्त होता है। विश्वनाथ ने इसके सम्बन्ध में मुख्यरूप से कहा है कि ''भाणः स्याद् धूर्त्तचरितों नानावस्थान्तरात्मकः''।

4. प्रहसन– ''इसमें कल्पित कथावस्तु, एक अंक, पाखण्डी, कामुक, धूर्त आदि पात्र एवं हास्य रस होता है''।

5. **डिम–** इसमें पौराणिक कथावस्तु, चार अंक विमर्शरहित चार सन्धियों में विभक्त वस्तु, धीरोद्धत नायक, हास्य तथा श्रृंगार से भिन्न छह रस होते हैं। सात्वती तथा आरभटी वृत्ति रहती है। विश्वनाथ के अनुसार :

मायेन्द्रवालसंग्राम क्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः।

उपरागैश्च भूयिष्ठो डिमः ख्यातेतिवृत्तकः।।

6. व्यायोग– इसमें प्रख्यात कथावस्तु होती है और एक ही अंक रहता है। इसका नायक धीरोद्धत तथा श्रृंगार एवं हास्य को छोड़कर शेष सभी रस होते हैं। गर्भ तथा विमर्श रहित तीन सन्धियां होती हैं। सात्वती तथा आरभटी वृत्ति होनी चाहिए। इस रूपक में पुरुष पात्र की अपेक्षा स्त्री पात्र अत्यल्प होते हैं। विश्वनाथ के अनुसार –

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुक्तः।

हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः।।

7. समवकार– देवता–दैत्यों से सम्बद्ध, प्रसिद्ध पौराणिक वस्तु, विमर्श सन्धि का पूर्ण अभाव, तीन अंक, धीरोदात्त तथा धीरोद्धत प्रकृति के एक या दो नायक, वीररस युक्त तथा सात्वत्ती एवम् आरभटी वृत्ति रहती है। विश्वनाथानुसार–

वृत्तं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयम्।

सन्धयो निर्विमर्शातु त्रयोऽङ्कास्तत्र चादिमे।।

8. वीथी– इसमें कल्पित वस्तु, एक अंक तथा श्रृंगार रस का बाहुल्य होता है। इसके नायक श्रृंगार रस का बाहुल्य होता है। इसके नायक श्रृंगार प्रिय होते हैं तथा कैशिकी वृत्ति रहती है। विश्वनाथ के अनुसार

वीथ्यामेको भवेदङ्कः कश्चिदेकोऽत्र कल्पयते।

आकाश भाषितैरूक्तैश्चित्रां प्रत्युक्तिमाश्रितः।।

9. अङ्क– प्रसिद्ध पौराणिक वस्तु किन्तु कवि के द्वारा व्यवस्थित। इसमें एक अंक, प्राकृत पुरुष नायक, करूण रस तथा सात्विकी वृत्ति रहती है विश्वनाथ के अनुसार–

'उत्कृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृतानराः'।

10. ईहामृग– इसमें कथा प्रख्यात और कल्पित दोनों मिली हुई होती हैं। नायक धीरोद्धत होना चाहिए। ईहामृग में चार अंक, गर्भ व विमर्श से रहित तीन सन्धियां, श्रृंगार रस एवं उक्त रूपक में दिव्य सुन्दरी के निमित्त युद्ध होता है। विश्वनाथ के अनुसार–

ईहामृगो मिश्रवृत्तः चतुरंकः प्रकीर्त्तित।

मुखप्रतिमुखे सन्धी तत्र निर्वहण्रं तथा।।

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि रूपक के सभी भेदों में प्राधान्य नाटक का है क्योंकि यह अन्य सभी रूपक भेदों की प्रकृत्ति है। नाटक के लक्षण के क्रम में भरत मुनि ने कहा है–

प्रख्यातवस्तुविषयं प्रख्यातोदात्तनायकंचैव।

राजविर्षवंशचरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम्।।

नाट्यशास्त्र प्रणेता का तात्पर्य है कि प्रख्यात कथावस्तु के विषय में प्रख्यात तथा उदात्तानायक राजर्षिवंश तथा दिव्याश्रय अनेक विभूतियों, विलास–समृद्धि आदि गुणों से युक्त नाटक कहा जाता है। नाटक के दस भेदों के अतिरिक्त अठारह उपरूपक भी माने गए हैं–

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।

प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेखंणं रासकं तथा।।

संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका।

दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशे भाणिकेति च।।

दशरूपक और 18 उपरूपक– इन सब में नाटक को सर्वाधिक रम्य माना जाता है। अपितु यहीं क्यों न कहें कि दृश्य और श्रव्य– सब काव्यों में नाटक सर्वाधिक रमणीय होता है– 'काव्येषु नाटकं रम्यम्'। 'हनुमन्नाटकम्' एक रूपक है, उसमें भी नाटक और नाटकों में भी महानाटक है। 'महानाटक' को जानने से पूर्व नाटक क्या है, यह जानना भी आवश्यक है क्योंकि महानाटक में नाटक के समस्त लक्षण (स्वरूप) होते हैं। 'साहित्यदर्पण' के लेखक श्री विश्वनाथ ने नाटक का लक्षण इस प्रकार किया है जो पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा किए लक्षणों का साररूप कहा जा सकता है।

नाटक का स्वरूप

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पंच सन्धिसमन्वितम्।
विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः।।
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम्।
पंचादिका दशपरास्तत्रांकाः परिकीर्त्तिताः।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः।।
एक एव भवेदंगी श्रृंगारो वीर एव वा।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः।।
चत्वारः पंच वा मुख्याः कार्यव्यापृत पूरुषाः।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्।

नाटक में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए– नाटक की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होनी चाहिए। पंच सन्धियों से समन्वित होनी चाहिए। विलास, ऐश्वर्य आदि गुणों से सम्पन्न कथा का प्रयोग हो। नाटक में सुख–दुःख की उत्पत्ति होनी चाहिए। अनेक रसों का उसमें सतत रूप में प्रयोग हो। उसमें पांच से दस अंक हों। नायक पुराण आदि में प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, धीरोदत्त, प्रतापी, राजर्षि अथवा दिव्य होना चाहिए। नायक, नायकोचित अन्य समस्त गुणों से युक्त होना चाहिए। श्रृंगार या वीर दोनों में से कोई एक अंगी रस होना चाहिए। अन्य सभी रस अंग रूप में रहते हुए अंगी का उपकार करें। नाटक का अन्त विस्मयजनक हो। नाटक के कार्य के निर्वाह हेतु चार या पांच प्रधान पात्र होने चाहिए। इसके अंक गोपुच्छाग्र के समान रचित हों।

महानाटक का शास्त्रीय स्वरूप–

'महानाटक' का समास विग्रह होगा– महच्चेदं नाटकम् इति। अर्थात् आकार व कथानक की दृष्टि से जो विशालकाय हो। इसमें अंकों की संख्या भी सामान्यतः दस से चौदह तक रहती है। यह भी रूपक का एक भेद है किन्तु भरत और धनिक ने कहीं भी महानाटक का उल्लेख नहीं किया है। मात्र साहित्यदर्पण में विश्वनाथ ने ही इसका उल्लेख किया है। विश्वनाथकृत लक्षण है–

एतदेव यदा सर्वैः पताकास्थानकैर्युतम्।
अंकैश्च दशभिर्धीरा महानाटकमूचिरे।।

अर्थात् महानाटक में नाटक के समस्त लक्षणों के साथ पताकास्थानक (चतुर्विध) का प्रयोग होता है। इसमें दस अंक होते हैं। ऐसी वृहदाकार रचना को 'महानाटक' कहा जाता है। कपिपुंगव हनुमान् की हनुमन्नाटकम् ऐसी रचना है, इसमें 14 अंक हैं। इससे ज्ञात होता है कि महानाटक में कम से कम 10 अंक होते हैं और अधिकतम 14–15 अंक भी हो सकते हैं। यह रचना पद्य–बहुला भी होती है। गद्य का समावेश कम होता है, परस्पर संवादों में लम्बे उपदेशात्मक संवाद होते हैं, वे भी पद्यबद्ध अधिक होते हैं। अभिनयात्मकता इतनी सरल नहीं हो पाती, क्योंकि लम्बे संवादों से उबाऊपन भी आ जाता है। ऐसा इन लक्ष्य ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है। अतः कहा जा सकता है कि नाटक के लक्षणों के साथ जहां चारों पताकास्थानकों का प्रयोग होता है एवं प्रकरण के समान कम से कम दस अंक होते हैं– वह रचना 'महानाटक' कही जाती है।

नाटक के सामान्य लक्षणों को पूर्व में ही बताया जा चुका है। यहां पताकास्थानक का भेदपूर्वक लक्षण करना भी अभीष्ट है। इस विषय में आचार्य धनंजय ने पताका एवं पताकास्थानक का अन्तर सिद्ध करने के लिए पताकास्थानक का विवेचन किया है। उन्होंने लिखा है– 'जहां किसी प्रसंग द्वारा भावी कथा सूचित की जाती है, वहां पताकास्थानक होता है। कहीं तो यह अन्योक्ति पद्धति पर होता है, कहीं समासोक्ति–पद्धति पर'–

प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचनम्।
पताकास्थानकं तुल्यसंविधानविशेषणम्।।

इसी विषय को धनिक ने और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है– 'जो वस्तु अंशभावी कथांश को ठीक प्रकार से सूचित करे, (जिस तरह पताका राजा के आगमन की सूचना देती है) पताकास्थानक कहलाती है। यह सूचना दो प्रकार से दी जाती है– 1. घटनाओं की समानता के आधार पर और 2. प्रस्तुत और भावी घटनाओं के वर्णन में प्रयुक्त समान विशेषणों के आधार पर। प्रथम में अन्योक्ति का आश्रय वांछित है या फिर अप्रस्तुत प्रशंसा ही आधार बनता है, द्वितीय में समासोक्ति आधार बनती है।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने पताकास्थानक के चार भेद किए हैं, उन्होंने लिखा है–

1. प्रथम भेद– जहां सहसा ही प्रीति के अनुकूल व्यापार होने से परमप्रीतिकारी प्रयोजन सिद्ध हो प्रथम पताकास्थानक है।

सहसैवार्थ सम्पत्ति–र्गुणवत्युपचारतः।
पताकास्थानकमिदं प्रथमं परिकीर्तितम्।।

2. द्वितीय भेद– अत्यन्त श्लिष्ट अर्थों के प्रतिपादक शब्दों से समन्वित अनेक प्रकार की रचना से विशिष्ट वचन हो, वह द्वितीय पताकास्थानक होता है।

वचः सातिशयं श्लिष्टं नानाबन्धसमाश्रयम्।
पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्तितम्।।

3. तृतीय भेद– जो अर्थ की अर्थात् प्रस्तुत वस्तु की सूचना देने वाला (अर्थोपक्षेपक, विषकम्भक आदि पांच में से एक) अस्फुट, निश्चित, श्लिष्ट, प्रत्युत्तर से युक्त वचन होता है, वह तृतीय पताकास्थानक है।

अर्थोपक्षेपकं यत्तु लीनं सविनयं भवेत्।
श्लिष्टप्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमुच्यते।।

4. चतुर्थ भेद – द्वयर्थक, सुसम्बद्ध, काव्य–प्रयोग के योग्य, प्रधान फलरूपी द्वितीय अर्थ का सूचक जहां वचन–विन्यास किया जाता है, वहां चतुर्थ पताकास्थानक होता है।

द्वयर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः।
प्रधानार्थान्तराक्षेपी पताकास्थानकं परम्।।

निष्कर्षतः इन चार पताकास्थानकं, नान्दी, आमुख, कथावस्तु अंक, गर्भांक, अर्थोक्षेपक (विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिता, अंकावतार व अंकमुख) से युक्त, जिसमें शृंगार या वीर रस में से कोई एक अंगी रस हो तथा अन्य रस यथा अवसर अंगी का पोषण करते हों तथा धीरोदात्त जिसका नायक हो, वह ऐतिहासिक कथावस्तु वाली रचना 'महानाटक' कहलाती है। इसमें 10–14 तक अंक होते हैं।

द्वितीय अध्याय

(क) आलोच्य महानाटक के कथानक का मूल स्वरूप–

हनुमन्नाटक की कथावस्तु वाल्मीकि रामायण के अनुसार है। रामायण को आदि काव्य व वाल्मीकि को आदि कवि के रूप में भारतीय इतिहास में मान्य है। चूंकि नाटक के प्रणेता हनुमान् (कपिपुंगव) को स्वीकार किया है। हनुमान् श्री रामचन्द्रजी के अनुचर व समकालीन रहे हैं। रामायण में कवि का विस्तार पूर्वक वर्णन है। तथापि यह नहीं कहा जा सकता है कि हनुमन्नाटक रामायण से पहले था या नहीं। नाटक को रामायण पूर्व में ले जाना इसलिए उपर्युक्त नहीं होता क्योंकि इसमें आनन्दवर्धनाचार्य के ध्वन्यालोक में, राजशेखर की काव्य मीमांसा में, धनिक के दशरूपकावलोक में, साहित्यदर्पण, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, भोज प्रबन्ध इत्यादि ग्रन्थों में इस नाटक के पद्य उपलब्ध हैं।

अन्य नाटकों की तरह इसमें नान्दी के श्लोकों के पश्चात् स्थापना नहीं है, प्रवेशक, विष्कम्भक इत्यादि का अभाव है। कवि के शब्दों में यह नाटक अपने अंकों से 14 भुवनों के निर्मल मोक्षमार्ग को धारण करता मिलता है। इसकी वर्णन शैली महावीर चरित, अनर्घराव, प्रबोध चन्द्रोदय आदि तुल्य है।

(ख) रचनाकार की मौलिक उद्भावनाए–

कपिपुंगव श्री हनुमान् ने हनुमन्नाटकम् में श्री राम के चरित्र को उभारने के लिए यत्र तत्र मौलिक उद्भावनाओं से संवारा है। उनकी मौलिक उद्भावनाएं इतनी सहज और सरल है कि मूल कथानक उनसे हटकर कही पृथक, प्रतीत नहीं होता। यह मौलिक उद्भावनाओं का ही चमत्कार है कि यह महानाटक प्रभावपूर्ण होता हुआ एवं नवीन चिन्तन को गरिमामय प्रस्तुति के साथ सफल हुआ है। संक्षेप में हनुमन्नाटक के मौलिक स्थलों को इस प्रकार देख सकते हैं।

नाटक कपिपुंगव हनुमान् की रचना है। हनुमान् जी द्वारा रचित हर एक पंक्ति मौलिक ही है तथापि कुछ संकेत के रूप उल्लेख करना कर्त्तव्य समझता हूं। इस नाटक में गद्यों का तो अभाव है ही साथ ही पद्यों के चरणों में संवाद के प्रसंग हैं यथा–

मार्तजानकि! को भवान्? वनमृगः केनाऽऽसम्प्रेषितः?
त्वद्दौत्येन रघूत्तमेन, किमिदं हस्तेऽस्ति? तन्मुद्रिका।
दत्ता तेन तवैव, तां निजकरादालभ्य चाऽऽलिंगय च
प्रेम्णाऽश्रणि ससर्ज सम्यगुदभूद्गात्रेषु रोमोद्गमः (ह. ना. – 6.14)

हनुमान् जानकी प्रणाम करके हे माता जानकीजी! (जानकी) आप कौन हैं? (हनुमान्) – मैं वानर हूं (जानकी) आपको यहां किसने भेजा? (हनुमान्) आपका सन्देश लाने के लिए रघुनाथजी ने। (जानकी) यह हाथ में क्या है? (हनुमान्) उनकी अंगुठी जो उन्होंने आपके लिए दी है। तब जानकीजी उसे अपने हाथ से उठाकर और छाती से लगाकर प्रेम के कारण आंसु गिराने लगी। उस समय उनके शरीर पर भली प्रकार रोमांच हो आया। इस प्रकार की शैली कवि की मौलिक उद्भावनाएं हैं। क्योंकि अन्य नाटकों में इस शैली का अभाव है।

ग. अंकानुसार कथानक सार

हनुमन्नाटक – 'हनुमन्नाटक' के प्रणेता महाकवि श्री हनुमत् हैं। श्री दामोदर मिश्र के द्वारा इस नाटक का संकलन किया गया है, इस नाटक के सम्प्रति दो संस्करण उपलब्ध हैं। एक 'महानाटक' नाम से 9 अंकों का नाटक, श्री मधुसूदन मिश्र द्वारा संकलित है, जो बंगाल में प्रचलित है। दूसरा 'हनुमन्नाटक' नाम से 14 अंकों का नाटक जो श्री दामोदर मिश्र द्वारा संकलित है, जो महाराष्ट्र में प्रचलित है।

संस्कृत के नाटक–साहित्य में हनुमन्नाटक अपना विशेष महत्त्व रखता है। यह दीर्घ विस्तारी नाटक है, जो प्रायेण पद्यों में ही विरचित है इसका गद्य भाग अत्यन्त स्वल्प है। इसमें बहुत से ज्ञात–अज्ञात रामचरित्र पर आधारित नाटकों से विषय वस्तु ली गई है। संवाद वस्तुतः बहुत कम हैं। नाटक में विदूषक का सर्वथा अभाव है, प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं है और सूत्रधार का भी अभाव है। विष्कम्भक का भी अभाव है। नाट्यसिद्धान्त की दृष्टि से यह नाटक की कोटि में नहीं आ सकता, पात्रों की संख्या विस्तृत है।

जनश्रुति – ऐसी जनश्रुति है कि कपिपुंगव हनुमान् ने इस नाटक की रचना करके पहाड़ के ढोकों पर खोद दिया था। जब वाल्मीकि मुनि ने उसे पढ़ा तो उन्होंने विचार किया कि यह अत्यन्त विशदरूप से लिखा गया है। यदि यह ग्रन्थ जनता के नेत्र पटल के सम्मुख आ जायेगा तो उनकी बनाई हुई रामायण का आदर

कम हो जाएगा। यह सोच कर उन्होंने वानराग्रगण्य से कह सुन कर उन शिलाओं को समुद्र में डलवा दिया। यहां दो सिद्धान्त हैं; एक के अनुसार राजा विक्रमादित्य ने उसे समुद्र में से निकलवा कर, मोम पर उसके वर्णों को मूद्रित करके प्रकट किया।

दूसरा सिद्धान्त है कि राजा भोज ने समुद्र में से उन शिलाओं को निकलवा कर, उस लुप्तप्राय ग्रन्थ का अपने सभापण्डित श्री दामोदर मिश्र द्वारा जीर्णोद्धार करा डाला।

कथानक– इसका कथानक वाल्मीकीय रामायण के अनुसार है। कथावर्णन में कुछ भिन्नता है।

प्रथम अंक– नान्दी के पश्चात् सुत्रधार के श्रीमुख से कहलवाया है कि दुर्दान्त राजाओं के बड़े–बड़े योद्धाओं के नाश करने में प्रथित पराक्रम वाले और प्रसिद्ध सूर्यवंश में ध्वजा के समान दशरथ नाम के एक बलवान् राजा हुए। जिनके यहां पृथ्वी पर राक्षसों का भारी भार उतारने के लिए पूर्ण–स्वरूप, सर्वव्यापक, पूज्य, परम कीर्ति वाले नारायण अपने मूल स्वरूप को चार विभाग करके पुत्र रूप में आये। राजा दशरथ ने दुःखित होकर श्रीराम को मुनि के हाथ में दे दिया जाता है। वहां विश्वामित्र के यज्ञ करते समय आए हुए राक्षसों को मारना। शिवधनुष को तोड़ना। सीता स्वयंवर श्रीराम व परशुराम का संवाद। विश्वामित्र, परशुराम, वाल्मीकि गौतम, वशिष्ठ आदि पुरोहितों द्वारा विवाह कृत्य सम्पादित हो चुकने पर उन्हीं लोगों के साथ लक्ष्मण सहित रामचन्द्र जी, जानकी जी को आनन्द देते हुए अयोध्यापुरी को गये इस प्रकार प्रथम अंक जानकी स्वयंवर नाम से सम्पन्न होता है।

द्वितीय अंक– द्वितीय अंक में श्रीराम व जानकी के विलास का वर्णन है संभोग श्रृंगार से ओत–प्रोत है। यथा– जानकी अल्हड़पन से डरती है सम्भोग के प्रसंग में शरीर को सिकोड़ती है, फैलाती भी है रतिभाव की ओर इशारा भी करती है। अन्तिम पद्य में कहा कि भावी वनवास रूप लम्बा वियोग अब जल्द आने वाला है– यही जानकर अद्‌भुत काम क्रीड़ापुत्तली जानकी ने रंगमहल में खूब मनमाना विहार किया इतने ही में पर्णपुटों में पड़ने वाली (काम विलास को रोकने वाले और प्रभात की सूचना देने वाले मुर्गे की बोली ओर (मुर्गो के ऊपर झपट कर कलेवा करने वाली) बिल्ली की बोली सुनकर सीता जी ने बिल्ली की पूजा की।

तृतीय अंक– श्रवण के पिता का शाप (श्राप), दशरथ द्वारा श्री राम के राज्यभिषेक के लिए विराट उत्सव मनाने के लिए घोषणा। कैकेयी को पता लगना।

कैकेयी का राजा दशरथ के पास जाना व सीता सहित राम को वनवास व मेरे पुत्र भरत को राज्य मिले ऐसा वर मांगा।

कैकेयी वाचमूते निखिल निज कुलांगारमूर्तिः स–सीतः शान्त्यै पुत्रस्य राज्यं भवतु वनमभिप्रष्य तामेष रामः।। (हनुमन्नाटक– पृष्ठ सं. 33)

श्रीराम का पिता के आदेश को स्वीकार करना। श्रीराम, सीता व लक्ष्मण ने अपनी सभी माताओं के चरणस्पर्श किए तथा वन की ओर चले गये। दशरथ का प्राणत्याग

भूत–भविष्यत् वर्तमान तीनों काल की बात को जानने वाले मारीच ने रावण का आदेश पाकर विचार किया कि–

रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि।

उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः।। (हनुमन्नाटकम – 3.24)

अर्थात् राम के द्वारा मरना होगा और रावण के हाथ भी करना है। तो जब दोनों के हाथ मरना ही तब श्रीराम जी अच्छे है, किन्तु रावण अच्छा नहीं।

एक दिन अचानक जानकी ने उत्कण्ठा के साथ दशकन्धर से भेजे हुए सोने के मृग को देखा। उस मृग की सारी देह सोने की, दोनों सींग 'पन्ना' के चारों खुर मूंगा के दोनों ओष्ठपटल लाल मणि की कान्ति से प्रदीप्त, बड़ी–बड़ी आंखों की पुतलियां 'नीलम' की थी, उसी प्रकार चंचलता से देखना भी आकर्षक था और उसका शरीर रत्नमय था उस हिरण को देखकर सीता श्रीराम से कहने लगी कि इसका वध कर मुझे मृगछाला ला दीजिए। श्रीराम सीता की बात सुनकर भूतल पर रेखा खींचने वाले लक्ष्मण जी के साथ–साथ मृग का शिकार करने के लिए चले गये। इस प्रकार मारीच आगमन अंक समाप्त हुआ।

चतुर्थ अंक :– श्रीराम द्वारा मारीच को मारना। रावण भिक्षा मांगने सीता के पास पहुंच जाता है सीता ने ज्यों ही लक्ष्मण की धनुष रेखा को लांघ कर रावण को भीख देने लगी त्यों ही वह उन्हें हरण कर ले गया व सीता विलाप करती रही जटायु का रावण से मुकाबला। रावण द्वारा जटायु को घायल करना। राम का सीता

के विषय में विलाप, जटायु से मिलन, जटायु से ही सीता को रावण द्वारा अपहरण की सूचना मिलना इस प्रकार चतुर्थ अंक सीताहरण नाम से समाप्त होता है।

पंचम अंक :– श्रीराम का सीता विषयक वियोग। हर एक से सीता विषयक पूछना, जटायु ने कहा रावण सीता को हर कर ले गया है। अजगर के माध्यम से भी पता लगता है और अजगर साफ–साफ बोली में कहता है आकाश गंगा के समान शीतल अंग वाली और तारागणों के बीच में चन्द्रमा के तुल्य एक स्त्री गयी है।

किष्किन्धा पवर्त पर उग्र मूर्ति शिवजी के अवतार पवन कुमार हनुमान् को देखकर रामजी ने उनसे पूछा– तुमने किसी पुरुष से अपहृता सीता को देखा है। तब वीर हनुमान् जी रामजी के दुःख को हरते हुए बोले– राक्षसों के राजा पापी रावण से हरी हुई आकाश मार्ग से जाती हुई किसी रामा (सुन्दर स्त्री) ने हा राम! हाय प्राणनाथ! आह (मैं बड़े कष्ट में हूं) लक्ष्मण के साथ इस शत्रु को मार डालना। इस प्रकार विलाप करती हुई बहुल जवाहरतों से जड़े हुए जिन आभूषणों को किष्किन्धा पर्वत पर फेंक दिया था वे ये हैं – ऐसा कहकर उन्हीं गहनों को अंजनीकुमार ने श्रीराम के आगे रख दिया। हनुमान् के द्वारा सुग्रीव से मिलन करवाना। सुग्रीव द्वारा अपने भाई बाली द्वारा अपनी स्त्री व राज्य के हरण का वृत्तान्त सुनाना।

राम द्वारा बालि का वध। सुग्रीव की पत्नी व राज्य की कमान को राम द्वारा सुग्रीव को सोंपना व युवराज पद के लिए राज्याभिषेक करना। इस प्रकार बालिवध नाम से पंचम अंक जाना जाता है।

षष्ठ अंक :– श्रीराम ने कहा हे सुग्रीव के सैनिकों सुनिए–

व्यसने महति प्राप्ते स्थिरैः स्यातुं न युज्यते।

लंका निःशंकमालोक्य क इहाऽऽगन्तुमर्हति।। (हनुमन्नाटकम् 6.1)

अर्थात् आप में कौन है जो शंकाविहीन लंका को देखकर लौट आने का साहस करेगा।

जाम्बवान् द्वारा हनुमान् को शंकर के अवतार रूप में बताना व इस कार्य को करने में समर्थ होने की बात कहना। श्रीराम द्वारा हनुमान् की स्तुति करना। हनुमान् द्वारा सीता को खोजने के लिए स्वीकार करना।

हनुमान् की ऐसी बात सुनकर स्वयं राम ने हर्षित हो सीता के ढूंढ़ने के लिए चटपट (तुरन्त) आज्ञा दे दी। हनुमान् द्वारा लंका पहुंचना। सीता को राम की मुद्रिका पहचान के रूप में देना। हनुमान् द्वारा अशोक वाटिका को उजाड़ना लंकापति को पहचान करवाकर लंका जलाकर सीता से राम के लिए पहचान स्वरूप चूड़ामणि प्राप्त कर श्रीराम को भेंट किया जाता है। इस प्रकार षष्ठ अंक को हनुमत् विजय के नाम से जाना जाता है।

सप्तम अंक :– अंक के प्रारम्भ में हनुमान् के कहने पर सुग्रीव आ गये। भिलनी से मिलन। विभीषण द्वारा रावण को समझाना। विभिषण कहते हैं कि दशरथ तनय राम के पास सीता को वापस भेज दीजिए।

रावण कहता है–

जानामि सीतां जनकप्रसूतां जानामि रामं मधुसूदनं च।
वधं च जानामि निजं दशास्यस्तथाऽपि सीतां न समर्पयामि।।

(हनुमन्नाटकम्–7.11)

अर्थात् मैं इस सम्बन्ध में सबकुछ जानता हूं फिर भी सीता को नहीं दुंगा।

तब आकाश मार्ग से विभिषण श्रीराम के पास आते हैं।

लंकामहातंक इवाऽम्बरेण विभीषणो राघवमाजगाम''

वानरों द्वारा सेतु को बनाया जाता है इस प्रकार सेतुबन्धन नामक सप्तम अंक समाप्त हुआ।

अष्टम अंक :– श्रीराम ने समुन्द्र पार कर गिरि सुवेल के पास पहुंचकर सेना का पड़ाव डाल दिया। उन्होंने राक्षस कुल पर दया करके इन्द्र के पौत्र (बालिपुत्र) अंगद को दूत बनाकर आदेश दिया कि आप रावण से मेरी ओर से यह सन्देश कहना कि अनजान से या ऐश्वर्य के मद से हमारे परोक्ष में हर कर लाई हुई इस सीता को छोड़ दो। अंगद का रावण के पास पहुंचना राम का सन्देश सुनाना। रावण का तिलमिलाकर मौन हो जाना रावण व अंगद का संवाद होता है। अंगद रावण से कहता है कि सीता देवी को छोड़ दो वृथा ही तुम अपने पुरुषार्थ को प्रकट करने वाली आत्मश्लाघा के गीत गा रहे हो। इस प्रकार लंका के महान् योद्धा रावण को दारूण (कठोर) वचनों से ललकार कर, लंका पुरी में आतंक उत्पन्न करते हुए

अंगद पुनः श्रीराम के पास लोट आये। इस प्रकार अंगदाधिक्षेपण नामक आठवां अंक समाप्त हुआ।

नवम अंक :– अंक में रावण की भुजाओं का वर्णन है। रावण मंच पर बैठकर अपने प्रत्येक शत्रु को देखता है। मन्दोदरी बारम्बार गिरती–पड़ती रावण के चरणों में गिर पड़ी। मन्दोदरी हाथ जोड़कर रावण से निवेदन करती है हे स्वामी –

त्वं बाहूद्धृतचन्द्रशेखरगिरिर्भ्राता जगद्भक्षकः
पुत्रः शक्रजयीत्यवेत्य रणधीर्नूनं बलो बालिजित्।
जद्राजन्नबला बलादपहृता देयाऽस्य सा जानकी
लंकायां रहसीत्युवाच वचनं मन्दोदरी मन्दिरे।। (हनुमन्नाटकम् 9.5)

अर्थात् ठीक है आपने अपनी भुजाओं से शिवजी के पर्वत (कैलाश) को उठा लिया है, आपके भाई कुम्भकर्ण संसार भर को खा जाने वाले हैं और आपके पुत्र इन्द्रविजयी है, तथापि हे प्राणनाथ! यह निश्चय समझिये कि रण से विचलित न होने वाले राम जी बड़े बलशाली हैं क्योंकि (वे आपको पराजित करने वाले) बालि के विजेता हैं। अतः जबर्दस्ती हरण कर लायी हुई उस अबला को लौटा दीजिए।

रावण अपनी भुजाओं के बल का बखान करते हैं और कहते हैं मुझ निशाच राज के आगे यह राम कोई बड़ा शत्रु नहीं है। युद्ध में मेरे सम्मुख इन्द्रादि देवता भी खड़े नहीं रह सकते। मेरे बाण राम के चरणों (प्राणों) को मिनटों में ले लेंगे। मन्दोदरी के द्वारा बार–बार कहने पर भी रावण नहीं मानता है।

रावण स्वयं सोचने लगता है कि इस नीतिशास्त्र को सुनकर कहीं बलशाली कुम्भकर्ण मुझे ही न मार डाले अतः पहले उसे ही युद्ध में भेजना चाहिए।

अन्त में मन्दोदरी करूणा से कहती है–

विभीषणः पापकथानिमग्नः, स्वापाकुलोऽभूद्यदि कुम्भकर्णः।
राजाऽभिमानी पतितः कलंके, लंके! निमग्नाऽसि गंभीरपंके।।

(हनुमन्नाटकम् 9.41)

अर्थात् हे लंकेश्वर तू गहरे दलदल में फंस गया है। इस प्रकार मन्त्रिवाक्य नामक नवम अंक प्रसिद्ध है।

दसम अंक :– रावण राक्षसों से कहता है कि मैं सीता के स्तन कलश से रमणीक वक्षःस्थल पर लोटता हुआ उसके मधुर अधर का पान करूंगा। राक्षस कहते हैं– 'यद्रोचते देवस्य'। राक्षस रावण के द्वारा मिलते–जुलते रूपरंग से परिपूर्ण लगातार खून बहते हुए मृतक तुल्य बन्द हुई आंखों वाले, राम तथा लक्ष्मण जी के शिरों को माया से बनाकर पापी रावण ने सीताजी के सामने रख दिया। सीता दोनों के शिरों को देखकर शीघ्रता से प्राणत्याग की कामना करती हैं उसी समय आकाशवाणी होती है।

न खलु न खलु सीते! रामभूपाल मौलिः
समरशिरसिवध्यो न प्रियस्ते कदाचित।
स्पृश कथमपि मातर्मा निशाचारणिं त्वं
हर! हर! हर भक्तस्यैष मायावतारः।।

अर्थात् श्रीराम व लक्ष्मण युद्धभूमि में हैं राम का कोई भी भी वध नही कर सकता। यह तो शिवभक्त रावण की माया का चमत्कार है। रावण राम का रूप धारण कर सीता के सामने उपस्थित होता है। सीता उठकर मायावी रावण के पास आती हैं आलिंगन करना चाहती है। उसी समय रावण नपुंसक होकर शिव शिव कहता हुआ वहां से गायब हो जाता है। सीता (सरमा के कहने से रावण को ही राम का स्वरूप धारण करने वाला जानकर दुःखित होती है) हा आकाश! हा पृथ्वी! हा करूण! हा सूर्य! हा पवन! हा धर्म! मैं कैसे पहचानूंगी कि प्राणनाथ आए हैं।

आकाशवाणी होती है

मन्दोदरी रघुशराहतराक्षसेन्द्रं
चुम्बिष्यति त्वमपि वेत्स्यसि तत्र रामम्।। (हनुमन्नाटक् 10.22)

अर्थात् जब मन्दोदरी मृत हुए रावण का चुम्बन करेगी उस समय आप भी रामजी को पहचान लेंगी। इस प्रकार रावण प्रपंच नामक दशम अंक समाप्त हुआ।

एकादश अंक :– श्रीराम सुवेल पर्वत पर पड़ाव डाले हुए हैं। रावण के पास से लौट कर आये हुए अंगद दूत से पूछते हैं कि रावण से सन्धि न हो सकी तो इसका परिणाम हमारे लिए अनुकूल होगा या प्रतिकूल।

अंगद कहते हैं हे महाराज! पुल्स्त्यवंशीय रावण से मैत्री रखने का परिणाम हमारे लिए हर तरह से प्रतिकूल होगा। इस विषय में स्वयं चन्द्रशेखर भगवान् शिव ही दृष्टान्त हैं।

राम द्वारा अंगद को कहा गया कि युवराज शूराग्रण्य वानर वीरों से कहदो कि हे सुग्रीव के सैनिकों! रात्रि में सचेत रहे कल सूर्योदय होने पर राम का युद्धारम्भ होगा।

राम सेना में सोए हुए राम–लक्ष्मण को मारने रावण द्वारा भेजी हुई प्रभंजनी नामक राक्षसी आती है। उसी समय वीर अंगद को जगा हुआ जानकर घबराहट में राक्षसी भागने को तैयार होती है। अंगद साहस के साथ राक्षसी को ललकारता है।

हनुमान् द्वारा अपनी सेना की देखभाल करना। कुम्भकरण का जगना, रावण के पास जाना। रावण कुम्भकरण की नीतिगत वार्तालाप ''शास्त्रनिःसंशयावाचः सतां कस्य न वल्लभ। (हनुमन्नाटकम् 11.20)। सरमा राक्षसी द्वारा अशोक वाटिका में से ही सीता को राम के दर्शन करवाती है। राम द्वारा कुम्भकर्ण का वध किया जाता है। व कुम्भकर्णवध नामक अंक समाप्त होता है।

द्वादश अंक :– इन्द्रविजेता रावण पुत्र मेघनाद को दशानन अपनी सेना का सेनापति नियुक्त करता है। मेघनाद कुम्भकर्ण के वध के रोष में आपे से बाहर हुए है। श्रीराम का वध करने के लिए अपना निशाना बनाता हुआ यज्ञभूमि में आया। इधर लक्ष्मण भी भीषण लड़ाई के मोर्चे के सामने आये। मेघनाद द्वारा नागपाश बन्धन वाले बाणों से राम व लक्ष्मण को बांध कर गिरा दिया।

श्रुत्वा हतिं दशरथात्मजयोर्विमान
मारूह्य पुष्पकमवाप्य दशाननस्य।
आज्ञां निनाय सरमा जनकस्य पुत्रीं
सीताविर्दीर्णह्रदयाऽसि दिवं गतासि।। (हनुमन्नाटक् 12.6)

अर्थात् दशरथ के दोनों राजकुमारों की मूर्च्छा (अथवा वध) का समाचार सुनकर, रावण भी अनुमति पाकर, पुष्पकविमान पर चढ़कर सीता जी के लिए जिसका कलेजा फट गया है ऐसी सरमा ने सीता जी को आकाश में ले जाकर दिखलाया। सीता भी सभी ऋषियों से आग्रह करती है की क्या आपका आशीर्वाद मिथ्या हो गया क्या? सीता की भुजाए फड़कती हैं। सरमा ने सीता को रणभूमि से

हटाया कि कही यह छलांग लगाकर कूद नहीं जाये। मेघनाद द्वारा माया से बनायी हुई सीता को मारना, सीता को देखकर श्रीराम का मूर्च्छित हो जाना। हनुमान् जी द्वारा मेघनाद के यज्ञ को विध्वंस कर दिया जाता है व लक्ष्मण द्वारा मेघनाद का वध कर दिया जाता है।

त्रयोदश अंक :– इस अंक में रावण कुपित होकर लक्ष्मण पर वीर नाशिकी शक्ति छोड़ता है। हनुमान् द्वारा उसे बलपूर्वक पकड़ कर समुद्र में फेंक दिया जाता है। रावण ब्रह्मा पर कुपित हो जाता है। ब्रह्मा अपने पुत्र नारद को बुलाकर कहते हैं कि हनुमान् के रहते यह शक्ति लक्ष्मण पर नहीं चलाई जा सकती अतः आप पवन पुत्र को दूसरी जगह ले जाइए। नारद के द्वारा हनुमान् को स्थान छोड़ने के लिए कहा जाता है इसी समय लक्ष्मण रावण द्वारा छोड़ी हुई शक्ति से मूर्छित हो जाते हैं।

राम के कथनानुसार रावण का राजकीय वैद्य सुषेण को हनुमान् द्वारा बुलाया जाता है वैद्य द्वारा संजीवनी बूंटी से ही उपचार हो सकता है और वह भी सूर्योदय से पहले लानी होगी। संजीवनी बुंटी द्रोणगिरि की विशल्यकरणी (घाव भरकर पीड़ा मिटाने एवं चेतनता लाने वाली संजीवनी) यह बुंटी नहीं पहचानने के कारण पर्वत को ही उखड़कर लाया जाता है। अयोध्या में पहुंचते ही यह क्या है इस विचार से भरत ने उन्हें बाण से मार गिराया–

'हुत्वा श्रीखण्डकाण्डं स तगरकुसुमं पुण्डरीकं मृणालं
क .....
प्राप्तस्तत्राऽऽंजनेयः स किमिति भरतस्तं शरेणाऽऽजघान।।

(हनुमन्नाटक् 13.24)

हनुमान् द्वारा राम व लक्ष्मण का नाम सुनकर भरत सहित अयोध्या में यज्ञ कर रहे सभी के चेहरों पर प्रसन्नता आ जाती है व लक्ष्मण संकट का समाचार सुनकर भरत द्वारा बाण की नोंक पर हनुमान् सहित पर्वत को लक्ष्मण के पास पहुंचाया जाता है हनुमान् द्वारा संजीवनी बुंटी लाने पर लक्ष्मण पुनः सचेत हो जाते हैं।

चतुर्दश अंक :– इस अंक में रावण द्वारा लोहिताक्ष नामक दूत को राम के पास भेजा जाता है। लोहिताक्ष द्वारा परशुराम को जीतकर पाये हुए शिव के प्रसाद स्वरूप फरसे को रावण को देने के लिए कहा जाता है तब रावण आपकी सीता को

लोटा देगें। रावण मन्दोदरी के पास पहुंचता है व मन्दोदरी रावण को युद्ध के लिए प्रेरित करती है। रावण युद्धभूमि में जाता है राम व रावण का युद्ध होता है। राम के बाण से रावण के कई मुख पास ही गिर जाते हैं। फिर उन्हीं मस्तकों को नया पैदा हुआ देखकर राम आश्चर्यान्वित होते हैं। इसके बाद शत्रु को मारने के लिए मुनि अगस्त्य के दिए ब्रह्मास्त्र को राम ने हाथ में लिया। यह बाण रावण के अन्तस्तल के रक्त से आप्लावित शरीर वाला होकर रावण के जीवन को लेता हुआ धरातल में घुस गया मन्दोदरी रावण के पाद पद्मों पर गिर जाती है। राम के द्वारा सीता की अग्नि परीक्षा ली जाती है। राम विभीषण का राज्याभिषेक करते हैं तत्पश्चात् सीता सहित अयोध्या पहुंचते हैं।

अयोध्या में मुनि वशिष्ठ व भरत द्वारा उनका राज्याभिषेक किया गया व श्रीराम विजय नामक अन्तिम अंक समाप्त हुआ।

तृतीय अध्याय

(क) हनुमन्नाटक में चित्रित विभिन्न रसों का स्वरूप

1. वीर रस :– हनुमन्नाटक का प्रधान या अंगीरस वीर रस है। आचार्य भरत के अनुसार ''अथ वीरो नामोत्त्म प्रकृति – रूत्साहात्मकः'' अर्थात् वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' है और उत्साह से ही वीर रस की अभिव्यक्ति होती है वीर रस असम्मोह, अध्यवसाय, नीति, विनय, बल, पराक्रम, शक्ति, प्रताप तथा प्रभाव आदि विभावों से उत्पन्न होता, उसका अभिनय स्थिरता धैर्य, शौर्य, त्याग तथा कुशलता आदि अनुभावों से किया जाता है। धृति, मति, गर्व, आवेग, उग्रता, अमर्श, स्मृति तथा रोमांच आदि इसके भाव व्यभिचारी है। नाट्यशास्त्र ग्रंथ की दृष्टि से दो आर्याएं भी हैं अध्यवसाय, अविषाद, विस्मयहीनता तथा मोहशून्यता आदि विविध विशेष अर्थों से उत्साह रूप (स्थायीभावात्मक) वीर नामक रस सम्भव होता है।

स्थिरता धैर्य, वीर्य, गर्व, उत्साह, पराक्रम, प्रभाव तथा आक्षेप करने वाले वचनों के द्वारा वीर रस का सम्यक् अभिनय किया जाता है। धनंजय के अनुसार वीर रस का लक्षण –

वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्व
मोहाविषादनयविस्मय विक्रमाद्यैः
त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षाः।। (दशरूपक 4.72)

रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार वीर रस का लक्ष्ण –

पराक्रम–बल–न्याय–यशस्तत्त्वविनिश्चयैः।
वीरोऽभिनयनं तस्य, धैर्य–रोमांचदानतः।। (नाट्य दर्पण 3.16)

अर्थात् यह रस युद्ध, धर्म, दान, दयादि उपाधियों से अन्वित होकर अनेक प्रकार का होता है। इसमें धैर्य घोर संकट आने पर भी अविचलित रहता है या निर्भिक रहना अथवा बुद्धिबल सन्तुलन रखना सहयान्वेषणादि – अनुभाव है और धृति–मति, गर्व स्मृति, तर्क रोमांचादि व्यभिचारी भाव है।

हन्नुमन्नाटक में वीर रस के प्रसंग सभी अंकों में मिलते हैं प्रथम अंक में श्रीराम द्वारा शिवधनुष को तोड़ना। श्रीराम व परशुराम संवाद।

द्वितीय अंक का प्रारम्भ ही वीर रस से होता है यथा प्रथम पद्य में श्रीराम स्वजनों के परम उत्साह रूपी आदर के साथ अयोध्या पहुंचते हैं तथा सीता लक्ष्मण के साथ राम ने सब गुरूजनों को मस्तक नवाया। तृतीय अंक में श्रीरामचन्द्र वनवास में प्रस्थान करते हैं तो श्रीरामचन्द्र में उत्साह परिवारजनों में करूण रस है। श्रीराम पिता की आज्ञा से राज्य का त्याग कर, रघुवंशियों में श्रेष्ठ रामजी, पीठ पर तरकस धारण किए और हाथ में धनुष–बाण लिए तत्काल वन में गये। चतुर्थ अंक– श्रीराम द्वारा मारीच को मारना। रावण द्वारा सीता हरण, जटायु व रावण का पराक्रम, जटायु का रावण के रथ का धुरा तोड़ना, ध्वजा को फाड़ डालना, पहिया का चूरा बना देना। घोड़ों को घायल करना, गरजना, ललकारना, रावण के बाल पकड़ना, कपड़े फाड़ देना, जटायु की चोट से रावण का झुकना इत्यादि।

'चक्रं चूर्णयति क्षिणेति तुरगान्नक्षः पतेः पक्षिराट्'' (हनुमन्नाटक 4.11)

पंचम अंक में श्रीराम का जटायु से मिलना जटायु ने अपने पराक्रम का उल्लेख करना श्रीराम का उत्साह के साथ चन्द्रमा को धिकारना, सीता का अन्वेषण करना, श्रीराम के उत्साह बढ़ाने हेतु मयुरों का नाचना। पक्षियों का चहकना, उत्साह के साथ लक्ष्मण से संवाद बालिवध।

षष्ठ अंक में हनुमान् द्वारा सीता खोजने हेतु लंका जाना।

धैर्यमवलम्ब्योद्यल्लांगुलास्फालके लिव्याकुली कृताम्बर चरः सज्जो बभूव

(हनुमन्नाटकम् पृष्ठ सं. 84)

अर्थात् धैर्य धारण कर ऊपर की ओर पूंछ उठाकर हिलाने की क्रीड़ा करते हुए आकाश में उड़ने वाले पक्षियों में घबड़ाहट पैदा करते हुए तैयार हो गए।

सप्तम अंक में हनुमान् जी के कहने पर सुग्रीव अपने सभी वानरों को उत्साह के साथ बुलाते हैं। रामचन्द्रजी भी रावण का वध करने के लिए प्रयाण करते हैं।

अष्टम अंक में श्रीराम द्वारा अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा जाता है दोनों के संवाद में उत्साह है।

नवम अंक –

रावणः (धैर्यमवलम्ब्य)

मर्तिर्विपश्चितां मन्त्री रतिर्मन्त्री विलासिनाम्

पराक्रमैकसाराणां मानिनां त्वसिवल्लरी।। (हनुमन्नाटकम् 9.13)

अर्थात् (धैर्य धारण कर) विद्धानों को उनकी बुद्धि मन्त्रणा देती, कामबाण पीड़ितों को चेष्टा की सलाह देती है और एकमात्र पराक्रम को अपना धन मानने वाले (हमारे जैसे) सम्मानी व्यक्तियों के लिए तो तलवार रूपी लता ही मन्त्री है (अर्थात् मुझे अपनी तलवार पर भरोसा है)

दशम अंक में जानकी कहती है अरे राक्षस? चुप व्यर्थ में बक बक करने से कोई लाभ नहीं।

'विरम विरम रक्षः। किं वृथा जल्पितेन' (हनुमन्नाटकम् 10.16)

एकादश अंक में राम व लक्ष्मण को मारने आई हुई राक्षसी (प्रभंजनी) को अंगद ललकारता है यथा– अरी निशाचरी! कहां जा रही है? ठहर एक क्षण रूक कर, फिर तु वहां जाना जहां अपनी भुजाओं के प्रताप से समस्त संसार में आतंक पैदा करने वाला रावण कहता है। अरी बेवकुफ आज अंगद के भुजपाश में पड़ी हुई चीख पुकार क्यों मचा रही है (देखे किसका साहस है) सिंह के पास आयी हुई हरिणी की तरह तुझे बचा सके।

मा गास्तिष्ठ निशाचरि! क्षणमपि स्थित्वा पुनर्गम्यतां
यात्राऽऽस्ते भुजविक्रमाऽखिलजग द्विद्रावणो रावणः।
अद्याप्यंगदबाहुपाश पतिता मूढ़े! किमाक्रन्दसे?
सिहंस्याऽन्तिकमागतेव हरिणी कस्त्वां परित्रायते।।

(हनुमन्नाटकम् 11.3)

द्वादश अंक – इस अंक में रावण ने अपने पुत्र मेघनाद को सेनापति नियुक्त करता है। मेघनाद का लक्ष्मण के साथ संवाद होता है मेघनाद अपना माया जाल फेलाता है। अन्त में लक्ष्मण ने मेघनाद को काटकर रावण के युगल करो में फेंक दिया यथा –

दोः स्तम्भस्फालकेलिस्फुट विकटरवध्वस्त घोरान्धकारः
संहारास्त्रं नियोज्य स्वधनुषि धरणीं पाणिनाऽऽहत्य वीरः।
क्रोधान्धो रावणस्य ज्वलदनलशिखामुद्गिरन् पाणियुग्मे
स्थित्वा चिक्षेप सौमित्रिरथ दृढ़शिरो मेघनादस्य साद्रि।।

(ह.ना. 12.19)

अर्थात् भुजदण्ड के ताड़न की लीला से भीषण शब्द उत्पन्न करके घोर अन्धकार को नाश करने वाले वीर, क्रोध में भरे हुए सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी ने हाथ से पृथ्वी को स्पर्श कर अपने धनुष पर संहारास्त्र चढ़ा कर जलती हुई आग की लपट उगलते हुए, मेघनाद के कर्कश शिर को मुकुट सहित काटकर रावण के युगल करों में फेंक दिया।

त्रयोदश अंक में ब्रह्मा द्वारा दी हुई शक्ति बाण को रावण द्वारा लक्ष्मण पर चलाया गया। लक्ष्मण घायल हो जाते हैं। हनुमान् द्वारा संजीवनी बुंटी लाने हेतु पवन कुमार ने पर्वत उखाड़ कर ले आते हैं यथा–

दृष्ट्वा सर्वास्तुहिन किरणोद्यत्प्रभास्तत्र शैले
वल्लीरत्नान्यमरखदिरांग। रभास्वन्ति वीरः।
भ्रान्त्वा दोर्भ्यो गिरिमुदहरन्नोत्पपातैष तातं
सस्माराऽयं द्रुतमुपगतस्तद्वलेनोज्जहार ।। (हनुमन्नाटकम् 13.23)

चतुर्थ दश अंक में श्रीराम जी की रावण को मारकर विजय पताका फहराई जाती है अतः लगभग अंक में उत्साह कीर्ति चारों ओर फैल रही है। तथापि एक प्रसंग यहां उद्धृत किया जा रहा है–

रामराम! महावीर! के वयं गुणवर्णने?
यत्क्रीर्तिकामिनीभाले कस्तूरी तिलकं नभः।। (हनुमन्नाटकम् 14.80)

अर्थात् आपका यश चारों ओर फैल रहा है।

2. शृंगार रस – काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में शृंगार को रसराज कहा गया है नाटक आदि रूपकों में जिन रसों को अंगी रस के रूप में स्वीकार किया गया है, उनमें यह अग्रणी है शृंगार रस का स्थायी भाव रति माना गया है।

आचार्य भरत ने लिखा है ''तत्र शृंगारो नाम रति स्थायी भाव प्रभवः'' आचार्य भरत के अनुसार शृंगार रस की दो अवस्थाएं होती हैं एक संभोग व दूसरी विप्रलम्ब ''तस्य द्वे अधिष्ठाने सम्भोगे विप्रलम्भश्च'' उनमें सम्भोग ऋतु माला, अनुलेपन, अलंकार, इष्टजन विषय तथा सुन्दर भवन आदि का उपभोग, उपवन गमन अनुभवन श्रवण, दर्शन, क्रिड़ा तथा लीला आदि विभागों के द्वारा उत्पन्न होता है। विप्रलम्भ का अभिनय निर्वेद, ग्लानी, शंका, असूया, श्रम, चिन्ता, औत्सुक, निद्रा, स्वप्न, व्याधि,

उन्माद आदि अनुभावों के द्वारा होता है इनमें विप्रलम्भ शृंगार के चार प्रकार हैं (1) पूर्वानुराग (2) मान (3) प्रवास (4) करूण।

धनंजय के अनुसार शृंगार का लक्षण –

रम्यदेशकलाकालवेष भोगादिसेवनैः।
प्रमोदात्मा रतिः सैव यूरोरन्योन्यरक्तयोः।
प्रह्लष्यमाणा शृंगारो मधुरांगविचेष्टितैः। (दशरूपकम् 4.48)

अर्थात् रमणीय देश, कला, काल, वेष तथा भोग आदि के सेवन द्वारा परस्पर अनुरक्त युवक युवति को प्रमोद होता है वह रति भाव कहलाता है, वही मधुर अंग चेष्टाओं से पुष्ट होकर (प्रह्लस्यंमाण) शृंगार रस कहलाता है।

भाव यह है कि इस प्रकार के वर्णन करने वाला काव्य शृंगार रस का आस्वादन कराने में समर्थ होता है। इसका अभिप्राय कवि को उपदेश (शिक्षा) देना है।

हनुमन्नाटक में शृंगार रस का प्रयोग स्थान–स्थान पर हुआ है। यथा प्रथम अंक में

रामे श्यामे सकामे स्पृशति जनक जा पाणिपद्मं प्रदत्तं
पित्रा नेत्रालिपद्मं प्रवरपुरवधुमण्डलानां मुहूर्ते।
तत्पाणिस्पर्शसौरव्यं परमनुभवती सच्चिदानन्द रूपं
तत्रासीद् बाणभिन्ना रमणरतिपतेर्योगनिद्रां गतेव ।। (ह.ना. 1.58)

अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप उनके कर स्पर्श के परम सुख को अनुभव करती हुई, रमण कराने वाले कामदेव के बाण से बिंध कर जानकी जी योग निद्रा में पड़ी हुई की तरह हो गयी।

द्वितीय अंक में जानकी व श्रीराम के विवाह के पश्चात् अयोध्या नगरी में रहते हुए का वर्णन है। माता जानकी व भगवान् राम का अभी–अभी (प्रथम अंक के अन्तिम पद्य में) विवाह सम्पन्न हुआ है। अयोध्या में दोनों किस प्रकार से रमण करते हैं इस अंक (द्वितीय) में यही प्रसंग है।

श्रीराम अयोध्या में पहुंच कर गुरुजनों को प्रणाम किया। काम बाण से पीड़ित हो राम किसी न किसी तरह दिन के तीन पहर बिता कर सीता को साथ में लिए घुड़साल में जाकर घोड़ों को लाठियों से पीटने लगे'' (हनुमन्नाटकम् 2.1)

द्वितीय पद्य में कामज्वर से पीड़ित कहा गया है। तृतीय पद्य में कामदेव के महान् दर्पयुक्त होने पर रजनी नायक चन्द्र अपनी किरणों को वितरण करता है।

चक्रक्रीड़ा कृतान्तस्तिमिर च य चमुस्फारसंहार चक्रं
कान्ता संयोग साक्षी गगनसरति यो राजते राजहंसः।
सम्भोगारम्भकुम्भः कुमुदवनवधूबोधनिद्रादरिद्रो
देवः क्षोरोदजन्मा जयति रतिपतेर्बाण निर्माणशाणः।। (ह.ना. 2.9)

अर्थात् चकवा की (रति) क्रीड़ा के लिय यमराज स्वरूप, गाढ़ अन्धकार ..... कामिनी मिलन के लिए ..... सम्भोग आरम्भ के लिए कलश कुमुदिनी रूपी वनवधू को जागने के कारण निद्रा से हीन ..... चन्द्रदेव की जय हो।

इत्याकर्ण्य चन्द्रमण्डलशाणोत्तीर्णो रतिपतेबांणो
जानकीरामचन्द्रयोर्वक्षः स्थले निपति–इति श्लोकाभिप्रायमवगम्य
निष्क्रान्तः सर्व आलिजनः अत्रापि तरूणरात्रो
शुकसारिकादीनां पक्षिणां मधुरस्वरैर्मदनोर्मिः संसूचिता'

(हनुमन्नाटकम् पृष्ठ सं. 27 अंक 2)

इसी अंक में जानकी रामचन्द्र जी का एकान्त विहार का प्रसंग है।

कामी श्रीराम –

निद्रलुस्त्री नितम्बाम्बर हरणरणन्मेखलारावधावत्
कन्दर्परिब्ध बाणव्यतिकर तरलाः कामिनो यामिनीषु।
ताटङ्कोपान्तकान्त ग्रथित मणि गणोद्गच्छदच्छप्रभाभि–
र्व्यक्तांगास्तुंग कम्पाजघन गिरिदरीमा श्रयन्ते श्रयन्ते (ह.ना. 2.19)

अर्थात् जिसके शरीर की आभा झलक रही हो ऐसी कांपते हुए जंघा रूपी पहाड़ की गुफा का आश्रय लेकर रात का समय काटते हैं।

जानकी – (प्रबुद्धा)

स्पृहयति च बिभेति प्रेमतो बालभावा–
न्मिलति सुरतसंगेऽप्यगंमाकुंचयन्ती।
अहह! नहि नहीति व्याजमप्यालपन्ती
स्मित मधुर कटाक्षैर्भावमाविष्करोति।। (ह.ना. 2.20)

अर्थात् रति भाव की ओर इशारा किया गया है।

रामः (सानन्दम्)

सीतां मनोहरतरां गिरमुद्गिरन्ती–
मालिंग्य तत्र बुभुजे परिपूर्णकामः।
रामस्तथा त्रिभुवनेऽपि यथा न कोऽपि
रामां भुनक्ति बुभुजे न च भोक्ष्यतीशः।। (ह.ना. 2.28)

अर्थात् श्रीराम सीता को छाती से लगाकर उस शयनागार में परिपूर्ण काम राम ने इस तरह उपभोग किया जैसा कि पति होकर भी कोई व्यक्ति अपनी कामिनी के साथ त्रिभुवन में न तो इस समय भोगता है न पहिले ही किसी ने भोगा और न कोई भविष्य में भोगेगा।

हनुमन्नाटकम् में तारा के प्रसंग में मन्दोदरी के प्रसंग में भी श्रृंगार रस के प्रसंग है परन्तु मर्यादा को ध्यान में रखते हुए सभी प्रसंग देना सम्भव नहीं है।

3. हास्य रस – हास्य रस का स्थायी भाव हास है हास्य रस दूसरे के विकृत वेश, अलंकार, धृष्टता, लोलुपता, कुहक (कांख या गर्दन आदि का स्पर्श) असत् (असंगत) प्रलाप, व्यंग्यदर्शन तथा दोषोदाहरण (दोष के कथन) आदि विभावों से उत्पन्न होता है।

आचार्य भरत के अनुसार लक्षण – अथ हास्यो नाम हासस्थायी भावात्मकः। स च विकृतपरवेषालंकार धाष्ट्र्य लोल्यकुहकासत्प्रलापव्यंगदर्शन दोषोदाहरणा–दिभिर्विभावैरूत्पद्यते।'' (नाट्यशास्त्र, षष्ठ अ. पृ. 355 मो. ब. वाराणसी)

यह हास्य रस आत्मस्थ तथा परस्थ दो प्रकार का होता है जब स्वयं हंसता है तब आत्मस्थ होता है और जब दूसरे को हंसाता है तब परस्थ होता है।

आचार्य धनंजय के अनुसार हास्य का लक्षण –

विकृताकृतिवाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।
हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रि प्रकृतिः स्मृतः।। (दशरूपकम् 4.57)

अपने या दूसरे के विकारयुक्त (बिगड़े हुए) आकार, वचन तथा वेष आदि (विभाओं) से जो हास (स्थायी भाव) होता है उसका परिपोष हास्य रस कहलाता है। इसे (हास को) त्रिप्रकृति (तीन प्रकार के आश्रयों में होने वाला) कहा गया है। इस

हास के दो निमित होते हैं आत्मस्थ और परस्थ और वह भी उत्तम, मध्यम, अधम प्रकृति के भेद छः प्रकार हो जाता है।

प्रथम अंक में पुरोहित व जनक का संवाद चल रहा होता है। पुरोहित जनक से कहते हैं यदि यह धनुष उनके गुरूदेव देवाधिदेव महादेव का न होता तो चढ़ाने की कौन बात करता, मिनटों में चूर्ण बना डालते तब जनक हंसकर कहते हैं (जनकः विहस्य पुरोहित प्रति)

शम्भोरावासम चलमुत्क्षेप्तुं भुजकौतुकी
महोश्वरं धनुः क्रष्टुमर्हते दशकन्धरः।। (हनुमन्नाटकम् 1.16)

सप्तम अंक में भिलनी व श्रीराम मिलते हैं तब भिलनी हंसकर श्रीराम से संवाद करती है। इसी प्रकार अंगद व रावण का संवाद होता है तो अंगद हंसकर रावण से कहता है

अंगदः (विहस्य)

रे रे रावण! हीन! दीन! कुमते! रामोऽपि किं मानुषः?
किं गंगाऽपि नदी? गजः सरगजोऽप्युच्चैः श्रवाः किं हयः?
किं रम्भाऽप्यबला? कृतं किमु युगं? कामोऽपि धन्वी नु किं?
त्रेलोक्य प्रकट प्रतापविभवः किं रे! हनुमान् कपिः?

(ह.ना. 8.24)

इसी अंक में रावण स्वयं के मस्तक कट कर गिरने पर स्वयं भगवान ही इस के साक्षी स्वरूप है – यथा

येऽहंपूर्वीकया प्रहारमभजन् मां छिन्धि मां छिन्धिमां
छिन्छीत्युक्तिपराः पुर्रारिपुरतो लंकापतेर्मौलयः।
ते भूमौ पतिताः पुननवभवानालोक्य मूर्ध्नोऽपरान्
याचिष्यन्त में हि नो वयमिति प्रीत्याऽट्टाहासं व्यधुः (ह.ना. 8.53)

मुझे काटिए, मुझे काटिए, ऐसे कथन में लगे हुए लंकाधिपति के मस्तक – पुरारि शिवजी के समक्ष अकेले–अकेले ही चोट खाकर कट कर भूमि पर गिरने लगे। वे फिर नवीन उत्पन्न हुए अन्य मस्तकों को देखकर, ये ही वरदान मांगे मुझे आकांक्षा नहीं है इस प्रकार आनन्द में भरकर ठहाका मारकर हंसने लगे।

एकादश अंक का प्रसंग

रामः विहस्य)

भो महावीरांगद युवराज। वानरभटान्

ब्रूहि। भो भो सुग्रीव सैनिकाः। रात्रौ

सावधानतया स्थातव्यं, श्व सूर्योदये रामस्य समरोत्सवो भविष्यति।

त्रयोदश, चतुर्दश अंक में हास्य रस के प्रसंग प्रचूर मात्रा में हैं।

4. रौद्र रस – आचार्य भरत के अनुसार रौद्र रस का लक्षण है – ''अथ रौद्रो नाम क्रोधस्थायिभावात्मको रक्षोदानवोद्धतमनुष्य प्रकृतिः संग्रामहेतुकः।।

(ना. शा., प्रो. ब्रजमोहन च व्याख्या पृष्ठ 207, अंक 6)

अर्थात् रौद्र नामक रस क्रोधस्थायीभावात्मक होता है। रौद्र रस राक्षस दानव तथा उद्धत मनुष्यों की प्रकृति वाला संग्राम हेतुक क्रोध स्थायी भावात्मक रस अधिक्षेप, अनृत भाषण, उपधात, वाक्यारूष्य अभिद्रोह तथा मात्सर्य आदि (उद्दीपन) विभावों से वह उत्पन्न होता है।

प्रस्तुत रौद्र रस के विषय में वंश पराम्परा से चली आ रही दो आर्याएं पायी जाती हैं। युद्ध में प्रहार, घात करने, छिन्न भिन्न करके काटने, संग्राम में सम्भ्रम आदि कारणों से रौद्र रस का अर्विभाव होता है। अनेक प्रकार के आयुधों के प्रयोग सिर कबन्ध तथा भुजा आदि के काटने, इस प्रकार से विशेष कार्यों के द्वारा रौद्र रस का अभिनय किया जाता है। इस प्रकार रौद्र वाक् तथा अंग चेष्टाओं से युक्त शस्त्र प्रहार की बहुलता से पूर्ण और उग्र कर्मों के व्यापार वाला रौद्र रस होता है। रौद्र रस के तीन भेद होते हैं आंगिक, वाचिक व नेपथ्यज।

आचार्य धनंजय के अनुसार रौद्र रास का लक्षण –

क्रोधो मत्सरवैश्विैकृतमयैः पोषोऽस्य रौद्रोऽनुजः

क्षोभः स्वाधरदंशकम्पभृकुटिस्वेदास्यरागैर्युतः

शस्त्रोल्लास विकत्थनांस धरणी घात प्रतिज्ञाग्रहै–

रत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलता सूयौग्य वेगादयः (दशरूपकम् 4.81)

हनुमन्नाटक में श्रीराम के चरित्र का वर्णन है। श्रीराम के वन में जाने के पश्चात् जब तक रावण वध नहीं होता है तब तक सभी अंकों में प्रायः रौद्र रस के प्रसंग उपलब्ध होते हैं कारण कि श्रीराम व राक्षसों का स्थान–स्थान पर मुकाबला

होता है। श्रीराम की विजय होती है। अतः सभी प्रसंगों को न देकर प्रभावशाली प्रसंग इस प्रकार हैं।

जनक पुरोहित के प्रति हंसता है व सीता के प्रति खेद प्रकट करता कारण कि शिवधनुष को किसी ने तोड़ा नहीं। जनक सीता को कहते हैं मूल्य तो केवल धनुष चढ़ा लेना है। हा सीते! अब तुम्हारी कौनसी गति होगी ''पिनाकरोपणं शुल्कं हा सीते! किं भविष्यति'' सीता – कहां तो कछुए सी पीठ की तरह कठोर धनुष! तब रावण पुरोहित क्रोध में कहता है

रावण पुरोहितः (सक्रोधम्)
सार्धे हरेण हरवल्लभया च देव्या
हरेम्ब षणमुख–वृष प्रमथावक्रीर्णम्।
कैलाशसमुद्धतवतो दशकन्धरस्य
केयं च ते धनुषि दुर्मद! दोः परीक्षा।। (हनुमन्नाटकम् 1.18)

अर्थात् अरे मदान्ध जनक! शिवजी और शिव प्रिया देवी पार्वती के सहित, गजानन, षडानन, नन्दी और प्रमथ आदि पार्षदों से व्याप्त कैलाश पर्वत को जिसने उठा लिया था उस रावण की बाहुपरीक्षा तू रौंदा के चढ़ाने में क्या लेता है? इसी अंक में पद्य नं. 43, 46 में भी रौद्र रस है।

द्वितीय अंक के पद्य नं. 5, चतुर्थ अंक के पद्य नं. 14, सप्तम अंक के पद्य नं. 11, 18, अष्टम अंक में 15, 16, 25, 46, त्रयोदश अंक का पद्य नं. 01, 10 में भी रौद्र रस है। चतुर्दश अंक में राम व रावण के युद्ध का वर्णन है अतः इस अंक में भी रौद्र रस है।

5. करूण रस– आचार्य भरत के अनुसार करूण रस का लक्षण – अथ करूणों नाम शोकस्थयिभाव प्रभवः'' अर्थात् शोक के स्थायी भाव से उत्पन्न रस करूण नाम से अभिहित होता है। करूण रस शाप के क्लेश में पड़े हुए प्रिय जन के वियोग, वैभव के नाश वध, बन्धन, पलायन, उपघात तथा व्यसन में पड़ जाने से आने वाले आकस्मिक संकट आदि विभाओं से विशेष रूप से उत्पन्न है जिसका अभिनय अश्रुपात, विलाप करने, मुख सुख जाने, मुख का रंग उड़ जाना, अंगों की शिथिलता, उच्छवास लेने, स्मृति के विलोप आदि अनुभावों के द्वारा किया जाता है।

करूण रस के व्यभिचारी भावों में निर्वेद, ग्लानी, चिन्ता, औत्सुक्य, आवेग, भ्रम, मोह, श्रम, विवाद, भय, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, त्रास, आलस्य, मरण, स्तम्भ वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु तथा स्वर–भेद आदि होते हैं। इस सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र में दो आभाए हैं।

इष्टजन के वध के दर्शन अथवा अप्रिय वचन सुनने से इन विशेष भावों से करूण नामक रस सम्भव होता है। ऊंचे स्वर में रोने, विजड़ित होने, भाग्य को कोसने, विलाप, शरीर के गिरना तथा छाती पीटने के द्वारा करूण रस का अभिनय किया जाता है।

आचार्य धनंजय के अनुसार करूण रस का लक्षण–

''इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करूणोऽनु तम्।
निश्वासोच्छ्वासरूदित स्तम्भ प्रलपितादयः।।
स्वापापस्मारदैन्याधिमरणालस्य सम्भ्रमाः।
विषाद जडतोन्माद चिन्ताद्या व्यभिचारिणः।।''

(दशरूपकम् 4.81–82)

हनुमन्नाटक में भी करूण रस के प्रसंग है जैसे रामचन्द्र का वनवास गमन, दशरथ का पुत्र वियोग, सीता हरण, श्रीरामचन्द्र का वियोग, सीता का वियोग, मन्दोदरी की रावण से सीता छोड़ने की विनती करूणा के साथ ही है। सीता की अग्नि परीक्षा इत्यादि।

प्रथम अंक पद्य नं.17 में सीता स्वयंवर के समय जब शिव धनुष नहीं तोड़ा जाता है तो जनक दुःखी होते हैं।

पुनर्जनकः (सीतां प्रति, सखेदम्) ... हा सीते! कि भविष्यति''

तृतीय अंक में कैकेयी द्वारा राम को वनवास व भरत के लिए राज्य मांगा जाता है तब पृष्ठ सं. 38 पर दशरथ बिलखकर कहते हैं यह करूण रस का प्रसंग है–

दशरथः – ''सकरूणं स्त्रीवचनस्वीकरणं मरणोत्साहं न नाटयन्महती
मूर्च्छामासाद्य धरणीतलमुपगतः कथमपि चेतनामुपलभ्य''

भरत का भाई राम के लिए विलाप का प्रसंग –

हा तात! मातरहह! ज्वलितानले मां
कामं दहत्वशनिशैल कृपाणबाणः
मन्थन्तु तान्विषहते भरतः सलीलं
हा! रामचन्द्रपदयोर्न पुनर्वियोगम्।। (हनुमन्नाटकम् 3.5)

अर्थात् रामचन्द्र के चरणों का वियोग नहीं सहन कर सकता।

तृतीय अंक में ही पद्य नं. 5 से 19 तक करूण रस ही है।

चतुर्थ अंक में पद्य नं. 14 में करूण रस है।

पंचम अंक में पद्य नं. 6, 8, 10, 20 में करूण रस है।

सीता का रावण द्वारा अपहरण कर लेने के पश्चात् श्रीराम पंचवटी में आते हैं व सीता को नहीं देख पाने पर रोते हुए सीता को पुकारते हैं, यह प्रसंग करूण रस का है यथा

''सितेति हा! जनकवंशजवैजयन्ति!
हा मद्विलोचन चकोरन वेन्दुलेखे!।
इत्थं स्फुटं बहु विल्प्य विलप्य राम
स्तामेव पर्णवसति परितश्चार।।'' (हनुमन्नाटकम् 5.8)

अर्थात् जोर–जोर से विलाप कर के रामजी उसी पर्णकुटी के चारो ओर फिरने लगे।

हा जानकि! प्रचलितोत्पलपद्मनेत्रे!
हा मे मनः कमलकानन राजहंसि!
एष प्रिये! तव वियोगजवह्निदग्धो
दानं प्रयामि भवतीं क विलोकयामि।। (हनुमन्नाटकम् 5.9)

अर्थात् हे प्राणप्यारी मैं तुम्हारे विरह से उत्पन्न अग्नि में भस्म हुआ दीन होकर, मारा–मारा फिर रहा हूं। अब तुम्हे कहां देखूं। इसके अतिरिक्त भी सभी अंकों में करूण के प्रसंग प्रायः मिलते हैं परन्तु उनका उल्लेख करना सम्भव नहीं है।

6. भयानक रस – आचार्य भरत के अनुसार

''अथ भयानको नाम भयस्यामिभावात्मकः''

अर्थात् भय स्थायीभाव वाला रस होता है। विकृत ध्वनियों से पिशाचप्रेत आदि के दर्शन से श्रृंगार तथा उलूक से त्रास तथा उद्वेग से शून्य घरो, वनगमन, अपने बन्धुजनों के वध तथा बन्धन आदि के देखने, सुनने या चर्चा करने आदि विभावों (कारणों) से उत्पन्न होता है।

हाथ पैर के कम्पन, नेत्रों की चंचलता, रोमांच (पुलक), मुख का रंग उड़ जाना तथा स्वर के परिवर्तन आदि अनुभावों (कार्यों) के द्वारा उसका अभिनय करना अपेक्षित माना जाता है और स्तम्भ स्वेद गद्–गद् होना, रोमांच, कम्प, स्वर परिवर्तन, विवर्ण होना, शंका, मोह, दैन्य, आवेग, चपलता, जड़ता, त्रास, अपस्मार और मरण आदि उसके भाव (व्यभिचारि) होते हैं। इस सम्बन्ध में आर्याए हैं– विकृत (शोर) भूत–प्रेत आदि का दर्शन, संग्राम, वन तथा सूने घर में जाना, गुरू तथा राजा का अपराध करना आदि कार्यों के अनुसार भयानक रस उत्पन्न होता है। भयानक रस के तीन भेद हैं।

कृत्रिम, अपराधजन्य और वित्रासिक। अभिनय की दृष्टि से इसके दो भेद होते हैं वाक्क्रियात्मक और नेपथ्य क्रियात्मक।

आचार्य धनंजय के अनुसार भयानक रस का लक्षण इस प्रकार है–

विकृतस्वरसत्त्वादेर्भयभावो भयानकः।
सर्वांगवेपयुस्वेदशोषवैवर्ण्य लक्षणः।
दैन्य सम्भ्रम संमोहत्रासादिस्तत्सहोदरः।। (दशरूपकम् 4.80)

हनुमन्नाटकम् में भयानक रस के प्रसंग प्रथम अंक में पद्य नं. 7, 20, 29, तृतीय अंक में पद्य नं. 11 में श्रीराम को वनवास का वर्णन है। चतुर्थ अंक में पद्य नं. 3 में श्रीराम लक्ष्मण को कहते हैं। लक्ष्मण यह मृग बार–बार गर्दन घुमाने से कितना सुन्दर लग रहा है। मुझ पीछा करने वाले की ओर एक टक नजर से कैसे देख रहा है। तीर लगने के डर से ''शरपतनभयात्भूयसा पूर्व कायम'' पिछले हिस्से को कैसे सिकोड़ रहा है। इस प्रकार का प्रसंग है इस पद्य में भयानक रस ही है। कारण कि मृग श्रीराम से भयभीत है।

पंचम अंक में श्रीराम अपने धनुष के विषय में कहते हैं। हे लक्ष्मण! भय मत करो,

मा भैषीर्मयि सौमित्रे। राघवेऽधिज्यन्वनि।

सतां देहं परित्यज्य निर्जगामाऽसतां भयम्।। (हनुमन्नाटकम् 5.46)

नवम अंक में पद्य नं. 8, 30 में भयानक रस है।

रावण अपनी भुजाओं का आडम्बर करता हुआ कहता है कि मेरे भुजदण्ड समूह से चढ़ाए हुए धनुष से घुटने वाले बाण, इस तपस्वी राम के चरणों को मिनटों में ले लेंगे। मन्दोदरी पद्य का भाव नहीं समझ पायी और मन्दोदरी रावण से कहती है यथा–

मन्दोदरी – (सभयं रावणोदितपद्यार्थम पश्यन्ती भाविना द्वितीयं पद्यार्यभवगम्य) अहो प्राणनाथ।

लंकेश्वर। किमिति स्वकपोलकाल्पितैरमंगलाऽऽलापैरात्मनो वधं मन्यते? शान्तं पापं प्रतिहतममंगलमिति।

रावणः (सभयं सशिरः कम्पं स्वगतं, वा स्वगतमेवोच्यते) नीतिशास्त्रमिदं श्रुत्वा कुम्भकर्णः क्वचिद्वली हन्ति चेन्मामतो युद्धे प्रथमं प्रेष्यतामयम्।। (हनुमन्नाटकम् 9.30)

अर्थात् रावण डर कर मस्तकों को हिलाता हुआ आप ही आप मनमें कहने लगा।

नाटक के अन्तिम अंक में रावण वध अर्थात् 14.42 में भी भयानक रस है।

7. बीभत्स रस– आचार्य भरत के अनुसार बीभत्स रस का लक्षण– 'अथ बीभत्सो नाम जुगुप्सा स्थायिभावात्मकः' अर्थात् जुगुप्सा स्थायी भावात्मक बीभत्स नामक रस होता है। बीभत्स रस की उत्पति अहृद्य, अपवित्र, अप्रिय तथा अनिष्ट के दर्शन, श्रवण तथा परिकीर्तन आदि विभावों से उत्पति होती है। समस्त अंगों के सिकोड़ने, मुख के संकुचित करने, वमन करने, थूकने, शरीर के अंगों को हिलाने आदि अनुभावों के द्वारा बीभत्स का अभिनय किया जाता है। अपस्मार, उद्वेग, आवेग, मोह, व्याधि, मरण आदि उसके व्यभिचारी भाव होते हैं। बीभत्स रस के विषय में वंश परम्परा से दो आर्याएं हैं– अनपेक्षित देखने से, गन्ध, रस स्पर्श तथा शब्द के अनेकानेक उद्वेगजनक दोषों से बीभत्स रस उत्पन्न होता है। मुख तथा नेत्रों से

संकुचित अथवा टेडे करने से, नाक के ढकने से सिर झुका लेने से तथा अस्पष्ट (लड़खड़ाते) पैरों के पड़ने से बीभत्स रस का भली भांति अभिनय किया जाता है। आचार्य धनंजय के अनुसार लक्षण–

बीभत्सः कृमिपूतिगान्धिवमथुप्रायैर्जुगुप्सैक भू
रूद्वेगी रूधिरान्त्रकीकसव सामांसादिभिः क्षोभणः।
वैराग्याज्जघनस्तनादिषु घृणाशुद्धोऽनुभावैर्वृतो
नासावक्त्रविकूणनादिभिरिहावेगार्तिशंकादयः।। (दशरूपकम् 4.73)

आचार्य धनंजय के अनुसार बीभत्स रस जुगुप्सा नामक स्थायी भाव से होता है। यह तीन प्रकार का है

1. कीड़े, दुर्गन्ध, वमन आदि (विभावों) से होने वाला उद्वेगी बीभत्स होता है।
2. रूधिर, अंतड़िया, हड्डी (कीकस), मज्जा (वसा) मांस आदि विभावों से होने वाला क्षोभण बीभत्स है।
3. जघन स्तन आदि के प्रति वैराग्य से होने वाला घृणाशुद्ध बीभत्स होता है। यह नाक सिकोड़ना, मुंह फेरना (विकूणन) आदि अनुभावों से युक्त होता है तथा इसमें आवेग, व्याधि (आर्ति), शंका आदि (व्यभिचारी भाव) होता है।

हनुमन्नाटक नाटक में बीभत्स रस का प्रयोग पृष्ठ 37, तृतीय अंक के पद्य नं. 2, 3, 10 में 5.27, अष्टम अंक में 5,8 दशम अंक में पद्य नं. 2, 3, 4, 5 इत्यादि प्रसंग उपलब्ध हैं।

रावण ने मायावी राम व लक्ष्मण का पुतला बनाकर सीता के सामने लेजाकर सीता को जब दिखाया जाता है तब सीता के लिए अनिष्ट दर्शन है। रावण का मोह सीता के लिए श्रीराम का मरण देखना यहां बीभत्स रस है–

अहह!। जनक पुत्री फुल्लराजीवनेत्री,
नयन सलिलधारा गर्भनिर्मुक्त हारा
रमणमरण भीता मृत्युना किं न नीता
हृदय दहन जालः संदहेद्वा विशालः।। (हनुमन्नाटकम् 10.2)

(रामशिरः कमलमधिकृत्य)
हा राम! हा रमण! हा जगदेकवीर तत्किं न स्मरसि?''

रावण मन्दोदरी आशोक वाटिका में क्रीड़ा करते हैं तो जानकी के पास बैठकर मन्दोदरी पूछती है रावण से

अत्रान्तरे मन्दोदरी रावणेन सह खेलमाना स्मरस्मेरवाणी विलासलोलया अशोकवनिकामागम्य जानकीस्थानमाक्रम्योपविश्याऽऽह प्राणनाथ! लंकेश्वर पश्य' (हनुमनाटकम् पृष्ठ सं. 141)

मन्दोदरी–जनकजांग–मनोहरत्वे

भेदोऽस्ति कोऽपि यदि नाथ! विचारय त्वम्?

मन्दोदरी और जानकी कुमारी के शरीर लावण्य में यदि कोई भिन्नता प्रतीत होती है तो हे नाथ आप विचार करके बताइए–

रावणः– मैंनः प्रिये! परिमलस्तव भेदमाख्या

त्यंगे विदेहदुहितुः सरसीरूहाणाम्।। (हनुमन्नाटकम् 9.39)

अर्थात् हे प्रियतमें! तुम्हारे शरीर में मच्छली की महक आ रही है और जानकी के अंग में से कमल की सुगन्धि निकल रही है यही भेद मालुम होता है।

यहां आचार्य धनंजय के अनुसार वैराग्य भाव होने से बीभत्स रस है।

8. अद्भुत रस – आचार्य भरत के अनुसार अद्भुत ''अथ अद्भुतो नाम विस्मयस्थायि– भावात्मकः'' अर्थात् विस्मय स्थायी भाव वाला अद्भुत रस होता है। अद्भुत रस दिव्य जनों के दर्शन, अभिलषित मनोरथ की प्राप्ति, उपवन तथा देवमन्दिर आदि में गमन, सभा, विमान माया, इन्द्रजाल की सम्भावना आदि विभावों से उत्पन्न होता है।

आंखे फाड़कर देखना, अपलक देखते रहना, रोमाच अश्रु, स्वेद, हर्ष, सादुवाद, दान, लगातार हा–हा करके भुजा, वस्त्र, अंगुली आदि के घुमाने अनुभावों (कार्यों) के द्वारा उसका अभिनय किया जाता है और उसके भाव (व्यभिचारी) स्तम्भ, अश्रु, गद्गद् रोमांच, आवेग सम्भ्रम, जड़ता, प्रलय आदि होते हैं इस विषय में वंशानुक्रम से दो आर्याएं प्राप्त हैं।

जो कथन, शिल्प तथा कार्य अन्यों की अपेक्षा विशिष्टता युक्त होता है, उस सबको अद्भुत रस में विभाव (कारण) समझा जाता है और उसका अभिनय स्पर्शग्रहण उछल–कूद के द्वारा, हा–हा शब्द से साधुवाद से गद्गद् वचनों से और स्वेद आदि के द्वारा किया जाता है।

धनंजय के अनुसार अद्भुत का लक्षण–

अति लौकेः पदार्थैः स्याद्विस्मयात्मा रसोऽद्भुतः

कर्मास्य साधुवादाश्रुवेपथुस्वेद गद् गदाः।

हर्षावेग धृति प्राया भवन्ति व्यभिचारिणः।। (दशरूपकम् 4.78–79)

अर्थात् अलौकिक पदार्थों (के दर्शन, श्रवण आदि) से उत्पन्न होने वाला विस्मय (स्थायी भाव) ही जिसका जीवन (आत्मा है वह अद्भुत रस है साधुवाद (सराहना करना) अश्रु, कम्पन, प्रस्वेद तथा गद्गद् होना आदि उसके कार्य अनुभाव है, हर्ष, आवेग और धृति इत्यादि व्यभिचारी भाव है।

हनुमन्नाटकम् में भी अद्भुत रस का स्थान–स्थान पर प्रयोग हुआ है। जिस रचना में राक्षसों का वर्णन हो वहां माया इन्द्रजाल इत्यादि विभाव होने की सम्भावना रहती है। विमान का वर्णन भी है।

तीसरे अंक में कैकेयी का अभिलषित मनोरथ की प्राप्ति का वर्णन है अर्थात सीता सहित श्रीराम को वनवास व भरत को राज्य मिले दशरथ से वर मांगा। राजा दशरथ भी तथास्तु अर्थात् जैसा तुमने कहा है उसे स्वीकार कर लेता हूं।

यथा – भूयाद्भूयस्तदनु वचनं 'हा' बभाषे तथेति'' (हनुमन्नाटकम् 3.4)

चतुर्थ अंक में मायामृग (मारीच) का नाट्य होता है। श्रीरामचन्द्र जी सीता के कहने के अनुसार फंस जाते हैं। वे मायामृग का शिकार करने जाते हैं। यथा

हस्ताभ्यां समुपैति लेढि च तृणं न स्पृश्यतां गाहते

गुल्मान्प्राप्य निर्वतते किसलयानाघ्राय चाघ्राय च

भूयस्त्रस्यति पश्यति प्रतिदिशं कण्डूयते स्वां तनुं

दूरं धावति तिष्ठति प्रचलति प्रान्तेषु मायामृगः।। (हनुमन्नाटकम् 4.2)

अर्थात् कभी वह मायामृग हाथ से पकड़े जाने लायक हो जाता है कभी घास चाटने लग जाता है कभी छूने लायक नहीं होता, कभी झाड़ियों में घुसकर नयी–नयी पतियों को सूंघ सूंघ कर निकल जाता है कभी डर के मारे कांपने लग जाता है कभी चारों दिशाओं की ओर निहारने लगता है, कभी अपनी देह को खुजलाने लगता है। कभी दूर भाग जाता है कभी किनारे–किनारे कतरा जाता है।

सीता को रावण द्वारा विमान में बैठाकर ले जाना अद्भुत रस है। नाटक पृष्ठ सं. 59 पर भी मायावी मृग का वर्णन है। पेज नं. 82 पर राम व हनुमान् का

संवाद अद्भुत का उदाहरण है। हनुमान् जी का द्रोणचल की चोटी पर जाकर संजीवनी न पहचानने पर पर्वत को उखाड़ लेना अद्भुत का प्रसंग है। (13.23) हनुमान् जी को भरत द्वारा बाण से गिरा देना (13.24) अद्भुत का प्रसंग है। (9.11, 11.41, 14.74) में भी अद्भुत रस का प्रसंग है।

ख. रसात्मक समीक्षा –

दृश्य काव्य अथवा रूपक के भेदक तत्वों में से रस भी एक तत्व है। इसकी व्यंजना करना, सामाजिकों के हृदयों में रसोद्रेक करना दृश्य काव्य का प्रमुख लक्ष्य है। रूपकादि को देखकर सामाजिक आनन्द विभोर हो जाता है। यह आनन्द ही रस कहलाता है जिसे आचार्यों के ब्रह्मानन्द सहोदर की भी संज्ञा दी है। यह रस विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों का विस्तार से वर्णन तृतीय अध्याय में किया जा चुका है। अतः उनको दोहराना उचित नहीं है।

महाकवि कपिपुंगव हनुमान् रस विवेचन से पूर्ण रूप से परिचित होने के साथ–साथ सभी रसों पर अधिकार भी रखते थे। ऐसा इस नाटक से प्रतीत होता है। हनुमान् द्वारा प्रणीत 'हनुमन्नाटकम्' में रसात्मक समीक्षा इस प्रकार है–

वीर रस (अंगी रस)–

वीर रस उत्साहात्मक है और उत्तम स्वभाव वाले पुरुषों में होता है। वह विनय, बल, असम्मोहावसाय, पराक्रम, शक्ति, प्रताप तथा प्रभावादि विभावों से उत्पन्न होता है। इसका अभिनय स्थैर्य, धैर्य, त्याग, वैशरद तथा रोमांचादि अनुभावों से करना चाहिए इसके व्यभिचारी भाव वृति, मति, गर्व, आवेग, अभर्ण, स्मृति तथा चिन्ता आदि होते हैं।

हनुमन्नाटकम् में वीर रस वैसे तो सभी अंकों में मिलता है तथापि प्रभावशाली अंश चतुर्दश अंक में है, जिसमें रावण के दशों शिरों को काटने का प्रसंग है।

पैतामहं रघुपतिः समरेऽतिकोपा
द्वाणं मुमोच हृदय दशकन्धरस्य
भित्वा स तद्धदयशोणित शोणगात्रः
प्राणान् विवेश धरणीतलमस्य नीत्वा (ह. ना. 14.42)

अर्थात् रामजी ने अत्यन्त कोप से पितामह ब्रह्मा के बाण को दशानन के वक्षःस्थल में लक्ष्य करके छोड़ा। वह बाण उसके अन्तस्तल के रक्त से आप्लावित

शरीर वाला होकर उसके जीवन को लेता हुआ धरातल में घूस गया। श्रीराम का यह पौरुष अद्वितीय है।

शृंगार रस–

रति नामक स्थायी भाव से जिसकी उत्पति होती है और जिसका वेष तथा भूसा उज्ज्वल है वह शृंगार रस उत्तम प्रकृति वाले युवक एवं युवतियों में दाम्पत्य भावमूलक होता है। इस रस की दो अवस्थाएं होती हैं, सम्भोग और विप्रलम्भ। उनमें सम्भोग में इष्टजन, स्पृहणीय विषम, मधुरगीतों का श्रवण आकर्षक–वस्तुओं का दर्शन। जल क्रीड़ा रूप विभाव हनुमन्नाटकम् में पाये जाते हैं और उनमें शृंगार रस की निष्पति होती है।

विप्रलम्भ शृंगार में एक दूसरे के प्रति अनुरक्त होते हुए भी परतंत्रादि के कारण नायक– नायिका का परस्पर संयोग नहीं हो पाता है यह औत्सुक्य, चिंता, शंका, ग्लानि आदि भावों से उत्पन्न होता है और इसमें रति के रूप की अपेक्षा बनी रहती है द्वितीय अंक में इस रस के प्रसंग उपलब्ध हैं।

द्वितीय अंक में कवि ने श्रीराम के मुख से संभोग का सुन्दर प्रसंग कहलवाया है जैसे–

निधुवनघन केलिग्लानिभावं भजन्त्या
रमणरभ सशंकातंकिचेतः प्रियायाः।।
अधरदशन सर्पत्सीत्कृताया धृतायाः
पिब पिब रसनां मे कामतो निर्विशंकम्।। (ह. ना. 2.21)

उपर्युक्त पद्य में जानकी श्रीराम से कहती है कि मैथुन की घनी केलि से सुस्ती में पड़ी हुई रमण के वेग की शंका से डरती हुई कलेजावाली, अधरच्छद (ओठों को दातों से काटने के कारण) सिसकारी भरने वाली इस अपनी प्यारी सी जीभ को जितनी आपकी इच्छा हो आप बेखटक पीजिए।

हास्य रस–

हास नामक स्थायी भाव स्वरूप वाला हास्य रस होता है। यह हास्य रस दूसरे के विकृत वेष अलंकार तथा धाष्ट्र्य, लालच, कुहक दोषों के उदाहरण देने आदि विभावों से उत्पन्न होता है।

हनुमन्नाटकम् में हास्य रस के प्रसंग स्थान–स्थान पर हैं। अष्टम अंक में रावण व अंगद का संवाद होता है। तब अंगद हंसकर कहते हैं

रे रे रावण! हीन! दीन! कुमते! रामोऽपि किं मानुषः?

चतुर्दश अंक में रावण का दूत लोहिताक्ष श्रीराम से संवाद करता है तब श्रीराम पूछते हैं।

रामः (तं रावणदूतं ज्ञात्वा प्रच्छति) अये लोहिताक्ष किं करोति राक्षसगणः?

लोहिताक्षः देव

अधाक्षीन्नो लंकामयमयमुदन्वन्तमतर

द्विशल्यां सौमित्रेरयमु पनिनायौषधिवावराम्।

इति स्मारं स्मारं त्वदरिनगरी भित्ति लिखितं

हनुमन्तं दन्तैदशति कुपितो राक्षसगणः।। (ह. ना. 14.1)

रामः (विहस्य) किमर्थमागतोऽपि

लोहिताक्ष – देव! भृगुपतिं निर्जित्य गृहीतं हरप्रसादपरशुं

रावणाय प्रयच्छ, ततस्तव सीतां समर्पयिष्यति लंकेश्वरः।

रामः विहस्य दूत! पश्य–

पौलस्त्यप्रणयेन तावकमति स्मृत्वा मनोमोदते (ह. ना. 14.2)

करूण रस–

शोक स्थायी भाव से पैदा होने वाला करूण रस है। आदि काव्य रामायण का आधार करूण रस है। हनुमन्नाटकम् नाटक भी रामायण को ही आधार मानकर रचा गया है तो इस नाटक में भी करूण रस होना सामान्य विषय है। क्योंकि जिस रचना में श्रीराम का वनवास हो, दशरथ का विलाप, श्रीराम व जानकी का वियोग हो तो करूण रस होना सामान्य विषय है।

पंचम अंक में रावण द्वारा सीता का हरण करने के पश्चात् जब वे शिकार से लोटकर पंचवटी में आते हैं तो विलाप करते हुए कहते हैं (पर्णकुटी को देखकर) कमल की कली के समान आंख वाली जानकी तुम्हे मैंने इस स्थान पर आलिंगन किया था यह वह स्थान है जहां चन्द्रमण्डल के समान तुम्हारे मुख के मधुर अधर का पान किया था। केलि समय में कुचले गए पराग से हीन ये फूल भी तो पड़े हुए हैं (ये सब तो है) पर हाय! प्यारी! तू कहां गयी ऐसा कहकर रोने लगे।

रामः कान्तामद्रिचरो दीनमरोदीत् (ह. ना. 5.6)

और भी

रामः स करूणं, आत्मनि प्राणवल्लभायाः परमप्रेमाणमधिगम्य)

शंके शशांके जगुरंकमेके पंक कुरंग प्रतिबिम्बितांगम्

धूमं च भूमण्डलमुद्धताग्नेर्वियोग जातस्य मम प्रियायाः।।

(ह. ना. 5.21)

श्रीराम कहते हैं कि चन्द्रमा में जो कलंक है वह कलंक नहीं मेरी समझ में तो मेरे वियोग से उत्पन्न हुई प्यारी जानकी के सन्तापाग्नि का धुंआ है।

रौद्र रस –

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध होता है। जहां परशुराम, रावण जैसे पात्र हो वहां क्रोध उनका प्रमुख गुण है।

रावण क्रोध में भरकर, रथ पर चढ़ने का अभिनय करता है।

रावणः (सक्रोधम्, रथारोहणं नाटयति)

भेरीमर्दलशंखतालनिकरस्वानोल्लसत्काहलो

निः साणस्वनपूर्णकर्णकुहरो निर्यन्नगर्या वभौ।

युद्धार्थ दशकन्धरो रथगतो माणिक्यमौलिर्यशो

दीपादीपितमस्तको जनकजारामो विधेः कर्मणा।। (ह. ना. 14.12)

भयानक रस –

भय स्थायी भाव वाला भयानक रस होता है यथा–

मन्दोदरी ने रावण को बार–बार सीता को छोड़ने के लिये कहा। हनुमान् द्वारा लंका में विध्वंस का स्मरण करवाते हुए सीता छोड़ने हेतु कहा तब रावण डरता है–

(मन्दोदरी कथनेन किंचितसभयो रावणः)

शुकं च सारणं वीरं दूतं प्रस्थाप्य रावणः।

रामदेवस्य शिविरं मन्त्र चक्रेऽथ मन्त्रिभिः।। (ह. ना. 9.8)

अद्‌भुत रस–

विस्मय स्थायी भाव वाला अद्‌भुत रस होता है।

चतुर्थ अंक में रावण द्वारा सीता का अपहरण पुष्पक विमान में बैठाकर लेजाना अद्‌भुत रस का प्रसंग पद्य नं. 10, 11, 12

हा राम! हा रावण! हा जगदेकवीर!
हा नाथ! हा रघुपते! किमुपेक्षसे माम?
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्ती–
मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम।। (ह. ना. 5.14)

अर्थात् इस प्रकार बार–बार विलाप करती हुई जानकी को आकाश मार्ग से लेकर चला गया। आकाश मार्ग (पुष्पक विमान) अद्‌भुत का प्रसंग है।

बीभत्स –

स्थायी भाव जुगुप्सा होता है।

सीता अपरण के पश्चात् श्रीराम के मुख से कवि ने कहलवाया है–

मांसं कार्श्यादभिगतमपा बिन्दवो वाष्पपातात्
तेजः कान्तापहरणवशाद्वायव श्वासदैर्ध्यात्।
इत्थं नष्टं विरहवपुषस्तन्मयत्वांच शून्यं
जीवत्येवं कुलिशकठिनो रामचन्द्रः किमेतत्।।

अर्थात् दुबला होने से मांस (भूमितत्व) गल गया है, निरन्तर आंसुओं की झड़ी लगी रहने से 'जल तत्व' सूख गया है, कान्ता के अपहरण हो जाने से 'तेजतत्त्व' जाता रहा, लम्बी लम्बी आहें भरने से 'वायुतत्त्व' नष्ट हो गया। इस प्रकार विरह में चित के तन्मय होने से 'शून्य' (आकाश) तत्त्व भी नष्ट हो गया है। इस प्रकार पांचों तत्त्व के पंचतत्त्व में मिल जाने पर भी वज्र के समान कठोर मैं राम जी रहा हूं। स लक्ष्मणो रामः एवं दैवयोगाद्‌गोर–गवय–गाज–भुजंग–शरभ–शार्दुल–कोल–बहुलकोलाहला–ऽहूतभूत–बेताल–समुताल–कालकराल–चक्रवाल–कण्ठनाल– प्रोच्छलतुमुल घोर चीत्कार मिलित बहुला–ऽन्धारकलित–गह्‌वरन्तराल–विलसद्‌विरल सरलप रिमल..... अर्थात् मनुष्यों के खून पीने वाले पिशाच आदि आये हैं।

चतुर्थ अध्याय

हनुमन्नाटकम् में चित्रित पात्रों का चरित्र–चित्रण

पात्र एवं चरित्र–चित्रण–

वैसे तो 'महानाटक' का मुख्य उद्देश्य रस परिपाक है, पर रस की परिणति दर्शकों के अनुरंजन से ही सम्भव है और दर्शकों का अनुरंजन नाटक के पात्रों के आकर्षक चरित्र के बिना असम्भव है। सच बात तो यह है कि किसी नाटक या महानाटक की सफलता या असफलता उसके कथानक के साथ–साथ उसके पात्रों के चरित्र पर भी निर्भर करती है। आलोच्य महानाटक का कथानक तो सुन्दर है ही उसके पात्र भी उज्ज्वल शक्ति से सजीव तथा आकर्षक हैं।

महानाटक का नायक मर्यादा पुरुषोत्तम विष्णु के अवतार श्रीराम हैं। महानाटक का प्रधान नायक किसी दिव्य लोक से कम नहीं। अन्य पात्र संसारी मानवों की भांति मानवीय गुण तथा दानवीय अवगुण विद्यमान हैं। यह दूसरी बात है कि उनके चरित्र में (महानाटक के नायक व अन्य सभी पात्र) अवगुणों की अपेक्षा गुणों की मात्रा बहुत अधिक है। इसलिए वे अवगुण इस गुण सन्निपात में उसी प्रकार लुप्त हो जाते हैं जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक।

''एकहिदोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विांकः''

(कुमार सम्भवमहाकाव्यम् 1.3)

कवि की एक विशद रचना होने के कारण ''हनुमन्नाटकम्'' में श्रीराम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, रावण, मन्दोदरी, मारीच, विश्वामित्र, हनुमान, सुग्रीव, अंगद, वानर सेना, अक्ष, विभीषण, कुम्भकरण, पशु–पक्षियों, देवताओं, ऋषियों, जटायु इत्यादि से समन्वित यह विपुलकाय नाटक है। नाटक के प्रधान पात्रों का चरित्र इस रूप में प्रस्तुत हुआ है।

(क) प्रधान पात्र :– श्रीराम का चरित्र–चित्रण –

1. धीरोदात्त नायक :– प्रथम अंक में नान्दी में भगवान श्रीराम के विषय में कहा कि राम का नाम आप (सभ्यों) के लिए कल्याण दायक हो। प्रथम अंक में द्वितीय पद्य में कहा शैव सम्प्रदाय के लोग 'शिव' नाम से, वेदान्ती लोग 'ब्रह्मा' के नाम से, बौद्ध सम्प्रदाय के लोग 'बुद्ध' नाम से प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणों के प्रयोग करने

में कुशल नैयायिक लोग 'कर्त्ता' नाम से, जैन मतानुयायी 'अर्हत' नाम से और मीमांसक लोग 'कर्म' नाम से जिनकी उपासना करते हैं वे त्रिलोकीनाथ विष्णुरूप श्रीरामजी आपको अभीष्ट फल दें।

यं शैवाः ..... त्रैलोक्यनाथो हरिः (ह.ना. 1.3)

आसीदुद्भटभूपतिप्रतिभट प्रोन्माथि विक्रान्तिको
भूपः पंक्तिरथो विभाव सुकुलप्रख्यात केतुर्वली।
उर्वीं बर्बर भूरिभारहरणे भूरिश्रवाः पुत्रतां
यस्यार स्वमथो विधाय महितः पूर्णश्चतुर्धा विभुः (ह.ना. 1.5)

अर्थात् सर्वव्यापक, पूज्य परम कीर्तिवाले नारायण अपने मूल स्वरूप को चार विभाग करके पुत्ररूप में आये (श्रीराम पुत्र रूप में आये)।

2. विनम्रता :– श्रीराम वैसे तो सम्पूर्ण नाटक में विनम्र ही दिखाये गये हैं तथापि उनकी विनम्रता का सर्वश्रेष्ठ प्रसंग प्रथम अंक में जब राम द्वारा शिव धनुष तोड़ा जाता है तो परशुराम क्रोधित हो जाते हैं तथा कहते हैं कि बड़े आश्चर्य की बात है। कार्तवीर्य अर्जुन की भुजा रूपी वन के काटने की लीला में चतुर, भुजबन्ध की जड़ाव के जवाहरती की कोरों पर रगड़ लगने से भीषण शब्द करने वाले और क्षत्रियों के कुलों के नाश करने में प्रलय कालीन द्वादशादित्य की भांति तेज वाले इस कुठार की याद तुझे कामादि (शिव) के धनुष को तोड़ने की इच्छा करते समय क्यों न आयी तब श्रीराम विनम्रता पूर्वक कहते हैं।

रामः सानुनयम्

बाहोर्बलं न विदितं न च कार्मुकस्य
त्रेयम्बकस्य महिमा न तवापि सैषः
तच्चापलं परशुराम! मम क्षमस्व
डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम्।। (ह.ना. 1.39)

अर्थात् परशुरामजी! न तो मैं आपकी भुजाओं का बल जानता था और न शिवजी के धनुष की तथा आपकी इस महिमा को भी नहीं जानता था इसलिए मेरी धृष्टता को आप क्षमा कर दीजिए। क्योंकि बालकों के अनुचित कार्य तो गुरूजनों की प्रसन्नता के कारण होते हैं।

अपि च

अयं कण्ठः! कुठारस्ते कुरू राम! यथोतिम्।

निहन्तुं हन्त गोविप्रान्न शूरा रघुवंशजाः।। (ह.ना. 1.40)

अर्थात् यह मेरा कण्ठ है और वह आपका कुठार है हे परशुराम! आप जो उचित समझे उसे करें। क्योंकि हम लोग रघुवंशी लोग गौ और ब्राह्मणों के मारने में अपनी शूरता नहीं समझते।

3. पराक्रमी :– श्रीराम का पराक्रम चरम कोटि का है। चाहे विपक्षी कितना भी प्रबल और यशस्वी हो राम पर युद्ध थोपा जाता है श्रीराम उसका दमन करता है। श्रीराम की विनम्रता उनके शौर्य का आभूषण है उनका शौर्य शिव के शौर्य के तुल्य अप्रितम है।

नाटक के चतुदर्श अंक में रावण व श्रीराम के मध्य युद्ध का वर्णन है अतः सम्पूर्ण अंक श्रीराम के पराक्रम के प्रसंग से पूर्ण है। तथापि महत्वपूर्ण प्रसंग इस प्रकार है

यद्रावणो बहुभिरेव भुजैः करोति

तद्राघवः प्रतिकरोति भुजद्धयेन।

कर्मद्वयं यदपि तुल्यफलं तथापि

रक्षः पतेर्दशगुणं नरवीरतुल्यम्।। (ह.ना. 14.37)

अर्थात् रावण जो सामरिक (बाण चलाना आदि) कर्म अपनी बहुत (बीस) भुजाओं से करता है, रामजी दो ही भुजाओं से उस का प्रतीकार करते हैं (काट देते) यद्यपि दोनों वीरों के कर्मों (एक दूसरे के चलाए अस्त्र को काटने) के परिणाम समान है तथापि राक्षसराज से नररूपधारी राम जी शूरता, वीरता, पराक्रमता दसगुनी अधिक है।

(ख) सहायक पात्र –

सीता – सीता पति परायण अनुपम सौन्दर्य आदर्श साध्वी इत्यादि विशेषताओं से युक्त इस महानाटक की नायिका है।

पतिपरायणा – श्रीराम जब वनवास जाते हैं तो श्रीराम को जाते हुए देखकर उस जनक कुमारी सीता ने पहिले कौशल्या के चरण–कमलों को और बाद में सुमित्रा को प्रणाम कर अपनी सास से अनुमति ली। हा! तोता, मैना, कोयल आदि

चिड़ियों को नजर भर देखकर सीता अपने पति की अनुगामिनी हुई। (ह. ना. 3.11) इस प्रसंग में पतिपरायणा के साथ–साथ संस्कारी होना भी दर्शाता है। अभिवादन भी दर्शाता है।

लोकोत्तर सुन्दरी – चतुदर्श अंक में जब मन्दोदरी व रावण सीता के पास बैठे हैं तब मन्दोदरी रावण से पूछती है मेरे में व सीता में क्या खास बात है की तुम इसको छोड़ नहीं रहे हो। रावण कहता है कि तुम्हारे शरीर में मच्छली की गन्ध आती है सीता के शरीर में कमल की महक आती है।

आदर्श साध्वी – सीता का चरित्र आदर्श साध्वी का है उनके द्वारा अशोक वाटिका में रहते हुए रावण के द्वारा अनेकों बार दबाव व निवेदन किया परन्तु साध्वी ने न तो दबाव स्वीकार किया नहीं निवेदन को स्वीकार किया।

रावण – रावण अत्यन्त पराक्रमी, अंहकारी, असहिष्णुता, अविनम्र, असत्य आचरण, असत्य वचन, क्रूरता व मायावी है। रावण शिवभक्त होने पर भी वह सीता को प्रणाम नहीं करता। कारण कि वह किसी के प्रति शालीनता से व्यवहार नहीं करता। रावण की विशेषता में व्यंग्य, कुटोक्ति, दर्पोक्ति इत्यादि है। असत्य वचन व असत्य आचरण रावण में कूट–कूट कर भरा हुआ है।

रावण ने अपने वंश को नष्ट करवाने में पूरी भूमिका निभाई है पहले भाई, बेटे, सेनापतियों को मरवाकर खुद सबके अन्त में राम से युद्ध करता है यह कोई कपटी ही कर सकता है। ..... सीता का वध करके राम के समक्ष प्रस्तुत करना व ..... रावण लक्ष्मण का मस्तक काटकर सीता के सम्मुख रखना ये रावण के चरित्र की पहचान करवाता है।

हनुमान् – पवन पुत्र हनुमान् इस नाटक में अपनी सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जब रावण के द्वारा सीता हरण होता है तो सीता के द्वारा गहने किष्किन्धा नामक पर्वत पर फेंके जाते हैं। श्रीराम जब सीता की खोज करते हुए हनुमान् तक पहुंचते हैं तब भी वे विनम्रता पूर्वक श्रीराम से वार्तालाप कर सीता के विषय में श्रीराम से कहते हैं कि

किष्किन्धाद्रौ रौद्ररूद्रावतारं दृष्ट्वा रामो मारूति वाचमूचे
सीता नीता केनचित्क्वापि दृष्टा ह्रष्टः कष्टं संहरन्प्राह वीरः (ह.न. 5.33)

तब हनुमान जी हर्षित हो राम जी के दुःख को हरते हुए बोले–

पापेनाऽऽकृष्यमाणा रजनिचरवरेणा ऽम्बरेण व्रजन्ती
किष्किन्धाध्रो मुमोच प्रचुरमणिगणैर्भूषणान्यर्चिताने।
हा राम! प्राणनाथेत्यहह। जहि रिपं लक्ष्मणेनाऽऽंजनेयः।।
यानीमानीति तानि क्षिपति रघुपूरः कापि रामाऽऽञ्जनेयः (ह.ना. 5.34)

अर्थात् आकाश मार्ग से जाती हुई रामा (सुन्दरी) ने हा राम! हाय प्राणनाथ! आह (मैं बड़े कष्ट में हूं) लक्ष्मण के साथ इस शत्रु को मार डालिए। इस प्रकार विलाप करती हुई बहुत जवाहरतों से जड़े हुए जिन आभूषणों को किष्किन्धा पर्वत पर फेंक दिया था वे ये हैं। ऐसा कहकर उन्हीं गहनों को अंजनी कुमार ने रघुनाथ जी के आगे रख दिया। हनुमान्जी व श्रीराम की मेरे विचार से प्रथम भेंट यहीं पर होती है इसके पश्चात् हनुमान् जी श्रीराम के भक्त बन जाते हैं।

सच्चे भक्त व दूत – किष्किन्धा से दोनों (राम व हनुमान्) की मित्रता होने के पश्चात् तो श्री हनुमान् ने सीता को खोजने में पूरी भूमिका निभाई। सुग्रीव से मित्रता के लिए भी श्री मारूती नन्दन ही कहते हैं हनुमान् जी लंका में जाकर सीता को श्रीराम की दी हुई मुद्रिका भेंट करते हैं। सीता से भी पहचान का चिह्न प्राप्त कर श्रीराम को लाकर देते हैं।

जब लंका पर युद्ध करने हेतु बन्दर सेना श्री हनुमान् द्वारा ही बुलाई जाती है। बुलाकर सेतु (पुलिया) का निर्माण विश्वकर्मा के पुत्र नल व नीर द्वारा करवाया जाता है।

लक्ष्मण जब मूर्छित होते हैं तो संजीवनी बुंटी सहित द्रोण पर्वत को ही उठाकर ले आते हैं। रावण को श्रीराम द्वारा मारा जाता है व अयोध्या में श्रीराम को पुनः स्थापित करने तक सच्चे भक्त की भूमिका निभाते हैं।

दशरथ – कवि ने अयोध्यापति का चरित्र अत्यन्त परिष्कृत और परिमार्जित रूप में प्रस्तुत किया है। नाटक के प्रथम अंक में ही सूत्रधार कहता है कि राजाओं के योद्धाओं के नाश करने में प्रथित पराक्रम वाले और प्रसिद्ध सूर्यवंश में ध्वजा के समान दशरथ नाम के एक बलवान राजा हुए। जिनके यहां पृथ्वी पर के राक्षसों का भारी भार उतारने के लिए पूर्ण स्वरूप, सर्वव्यापक, पूज्य, परम कीर्तिवाले नारायण (श्रीराम) अपने स्वरूप को चार विभाग करके पुत्र रूप में आये।

नाटक में कहा कि श्रीराम दशरथ के सबसे बड़े पुत्र हुए। जिन्हें विश्वामित्र मुनि ने राक्षसों के उपद्रव के भय के कारण राजा से मांगा। उस यश के धनी राजा दशरथ ने दुःखित होकर राम को मुनि के हाथ में दे दिया। तब राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ बड़ी खुशी से उनके पीछे–पीछे गये।

..... रामः सोऽप्यथ .....
..... नरपतिः प्रादात्सुतं दुःखित
स्तस्मै सोऽपि तमन्वगादनुगतः सौमित्रिणोच्चैर्मुदा।। (ह.ना. 1.6)

धर्म का पालन – दशरथ ने राम को लोकनीति व धर्मनीति के साथ–साथ रणनीति में निपूण देखकर उन्हें युवराज पद के लिए अभिषेक करने का विचार किया–

रामे नमचयं दृष्ट्या लोकधर्मसहं च यत्।
यौवराज्याभिषेकाय नृपे मतिरभूत्तदा।। (ह.ना. 3.1)

प्राचीनकाल में नियमानुसार ज्येष्ठ पुत्र ही राजा का उत्तराधिकारी होता था। दशरथ ने भी धर्म का पालन करते हुए श्रीराम का राज्याभिषेक करना चाहा।

वचन का पालन – राजा दशरथ कैकेयी को पूर्व में वर दिया हुआ था, कैकेयी ने भी राम का राज्याभिषेक देखकर मन में विचार किया कि वर मांगने का उचित अवसर है।

कैकेयी – (आत्मगतम्) प्रातः किल मद्वाग्बन्धकालस्तर्हि द्रुतं राजानं भरतराज्यं प्रार्थयामिः न खलु काल क्षेपः श्रेयसे (रहसि उपगम्य प्रकाशम) राजन्नमंगलीरियं वधुर्यतोऽस्या आगमनमात्रेण महोत्पात सम्भवन्तीति। (ह.ना. तृतीय अंक पृष्ठ 37)

कैकेयी – कैकेयी वाचमूते निखिलनिजकुलांगरमूर्तिः स सीतः
शान्त्यै पुत्रस्य राज्यं भवतु वनमभिप्रेष्यतामेष रामः।। (ह.ना. 3.3)

अर्थात् सीता सहित राम को वनवास व मेरे पुत्र भरत को राज्य मिले।

दशरथ – सकरूणं स्त्रीवचनस्वीकरणं मरणोत्साहं न नाटयन्महतीं
मूर्च्छामासाद्य धरणीतलमुगतः कथमपि चेतनामुपलभ्य)

फिर कठिनाई से होश में आया।

दशरथ – भूयादभूयस्तदनुवचनं हा! बभासे तथेति (ह.नां. 3.4)

अर्थात् हे कैकेयी जैसा तुमने कहा है उसे स्वीकार कर लेता हूं।

लक्ष्मण – श्रीराम की तरह छोटा भाई लक्ष्मण भी प्रतापवान, चरित्रवान, प्रतिज्ञावान, पराक्रमी है। श्रीराम पंचवटी में जब मारीच का पीछा करते आगे बढ़ जाते हैं तो भाभी (सीता) के लक्ष्मण रेखा खेंचकर जाते हैं और कहते हैं कि आपको रेखा के भीतर ही रहना है। परन्तु सीता ने उल्लंघन किया तो रावण ने अवसर पाकर अपहरण भी कर लिया। सीता किष्किन्धा नगरी के ऊपर से जब आकाश मार्ग से जाती है तो राम के साथ लक्ष्मण का भी नाम लेती है इससे यह प्रतीत होता है कि भाई व भाभी के प्रति कितना प्रेम है। लक्ष्मण वनवास में श्रीराम की परछाई बनकर रहते हैं। हर परिस्थिति में राम के साथ रहते हैं। कभी राम को निरास नहीं होने दिया।

चरित्रवान – हनुमान् के द्वारा जब राम को गहने भेंट किये जाते हैं तो श्रीराम लक्ष्मण से गहनों के विषय में पूछते हैं तब लक्ष्मण कहते हैं मुझे तो नहीं पता क्योंकि मैंने कभी भाभी का मुख नहीं देखा अर्थात् मेरी नजर हमेशा उनके चरणों में ही रहती है। यह स्त्री सम्मान के प्रति चरित्रवान का बड़ा उदाहरण हो सकता है–

रामः

जानक्या एव जानामि भूषणानीति नाऽन्यथा

वत्स लक्ष्मण! जानीषे पश्य त्वमपि तत्त्वतः।। (ह.ना. 5.35)

अर्थात् भाई लक्ष्मण तुम भी तो पहचानते हो जरा गौर से देखो तो सही ये गहने दूसरे के तो नहीं?

लक्ष्मण – सवाष्पम्

कुण्डले नैव जानमि नैव जानामि कंकणे।

नूपुरावेव जनामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।। (ह.नां. 5.36)

अर्थात् मैं तो नित्य प्रति चरणों में ही मस्तक नवाने के कारण पायलों (पायजेबों) को ही पहचानता हूं।

मार्यादा को ध्यान में रखते हुए सभी का चरित्र–चित्रण करना सम्भव नहीं है। अन्य पात्रों में

जनक – ब्रह्मज्ञानी हैं, सीता के पिता हैं।

विश्वामित्र – राक्षसों के विनाशक और अशेस विधाओं के ज्ञाता हैं।

सूत्रधार – नाटक का मुख्य अभिनय कर्ता

रावण पुरोहित – जनक से रावण के लिए सीता मांगता है।

परशुराम – फरशे को लेकर श्रीराम को ललकारता है। परशुराम को ही जामदग्न्यः कहा गया है।

कैकेयी – राजा दशरथ की पत्नी भरत की माता। राम को वनवास भरत के लिए राज्य इसी ने मांगा।

सुमित्रा – लक्ष्मण की माता राजा दशरथ की पत्नी।

मारीच – रावण द्वारा भेजा हुआ मायावी राक्षस। इसी मारीच ने श्रीराम को वन में दूर तक लेकर जाना स्वयं का मोक्ष होना। रावण द्वारा सीता के हरण में मुख्य भूमिका निभाने वाला पात्र।

जटायु – राजा दशरथ का मित्र पक्षीराज जटायु ने रावण पर प्रहार करके उसके कपड़े फाड़ दिए उसके रथ के पहिये को भी नष्ट किया।

अजगर – अजगर साफ–साफ मनुष्य की बोली बोलता है और श्रीराम से कहता है कि चम्पे के फूल के सदृश रंग वाली, कठोर स्तन वाली, देह में केसर लगाई हुई आकाश मार्ग से आकाश गंगा के समान शीतल अंगवाली तारागणों के बीच चन्द्रमा के तुल्य एक स्त्री देखी गयी और वह गयी है।

सुग्रीव – किष्किन्धा नगरी का पूर्व राजा श्रीराम द्वारा पुनः किष्किन्धा नगरी में राज्यभिषेक करना। वानर सेना प्रमुख है।

तारा – बाली की पत्नी।

बालि – किष्किन्धा नगरी का राजा। सुग्रीव के कथनानुसार श्रीराम के द्वारा बालिवध किया गया।

भीलनी – श्रीराम से मिलने का प्रसंग अपने धर्म जानने वाली है।

विभीषण – रावण का भाई श्रीराम का भक्त रावण के मरने के पश्चात् विभीषण ही लंका का राजा बना।

मन्दोदरी – रावण की पत्नी। सीता को लोटाने हेतु रावण को अनेको बार समझाया। रावण ने सीता को नहीं लोटाया। अन्त में रावण की मृत्यु होती है।

ब्रह्मा – रावण जब लक्ष्मण पर ब्रह्मा के द्वारा दी गई शक्तिबाण का प्रयोग करता है तो ब्रह्मा को रावण कोसता है।

नारद – ब्रह्मा का पुत्र, ब्रह्मा ने नारद को बुलाया कि हनुमान् के होते हुए शक्तिबाण का प्रयोग नहीं हो सकता आप हनुमान् को किसी दूसरे स्थान पर ले जाइए।

वानरभट्टाः – वानर सैनिक

इन पात्रों के अलावा जाम्बवान, अंगद, विरूपाक्ष (राक्षस मंत्री), महोदर (मंत्री), त्रिजटा, सरमा (राक्षसी) इत्यादि पात्र भी इस नाटक के नाटकत्व को सफल बनाने में अपनी भूमिका निभाते हैं।

(ग) चरित्र–चित्रण का समीक्षण –

कपिपुंगव हनुमान् व नाटक संकलनकर्ता दामोदर मिश्र ने नाटक के नायक आदर्श पुरुषोत्तम श्रीराम जो असंख्य गुणों से युक्त दर्शाया है, क्योंकि श्रीराम विष्णु के अवतार हैं। श्रीराम में उत्साह की कमी नजर नहीं आती है। श्रीराम राजकुमार होते हुए भी कठिन समस्याओं का सामना करते हैं। दण्डकारण्य में हजारों की संख्या में राक्षसों को मारना, सीता की खोज करना, बाली को मारना, सुग्रीव को सिंहासन पर बैठाना, रावण को मारना, विभीषण को सिंहासन पर बैठाना पृथ्वी लोक पर श्रीराम का बड़ा कार्य है। राम रावण युद्ध में मरे हुए व घायल हुए समस्त वानरों को सजीव कर उनकी नगरी पहुंचाना व समस्त वानरों को आभूषण, वस्त्र आदि देकर लोटाना कृतज्ञता को ज्ञापित करता है।

सीता पतिपरायणा स्त्री है। पति के साथ वे समस्त सम्भावित कष्टों को भी सुख मानती हैं और पति के अभाव में उनके लिए दुःख है। सीता साध्वी लोकोत्तर सुन्दरी है।

रावण – पराक्रमी, दर्पयुक्त, क्रूर प्रकृति वाला है।

दशरथ – अयोध्या के राजा को नाटककार ने परिष्कृति परिमार्जित रूप में प्रस्तुत किया।

मन्दोदरी – रावण की पत्नी है नाटककार ने मन्दोदरी को आचरणशील नारी के रूप में प्रस्तुत किया।

हनुमान् – नाटक में सहायक पात्र के रूप में हनुमान् ने सीता हरण से लेकर अन्त तक भूमिका निभाई है।

सुग्रीव – श्रीराम के साथ जैसी मित्रता हुई पूरी करता है। श्रीराम भी सुग्रीव को राजसिंहासन पर सुशोभित करता है। कवि ने सभी पात्रों को प्रसंगानुसार मंच पर दिखाया है।

अन्त में कहा जा सकता है कि सभी पात्रों का चरित्र–चित्रण समीक्षा की कसौटी पर खरा उतरता है।

पंचम अध्याय

महानाटक की छन्दो योजना –

रूपकों में यद्यपि संवादों की प्रधानता रहती है फिर भी कवि उसे और ज्यादा सरस और सरल बनाने के लिए उनमें छन्दों की योजना भी करता है। काव्य रचना की दृष्टि से गद्य, पद्य और चम्पू प्रकार का काव्य है। नाटक गद्य प्रधान होता और गद्य संवादात्मक होता है। लेखक नाटक के रसविधान में चमत्कार लाने के लिए उसमें श्लोकों का प्रयोग करता है। वह श्लोक भी संवाद का ही भाग होता है। हनुमन्नाटकम् में तो संवाद भी श्लोकों के माध्यम से ही हैं। इस नाटक की एक विशेषता है कि श्लोक में एक ही पद्य में अलग–अलग पात्रों द्वारा संवाद दर्शाया गया है। जब तक नाटक में नृत्य नृत आदि का प्रयोग नहीं होता है वह रोचक और मनोरंजक नहीं बन पाता है। वह छन्द काव्य नाटक के दोषों को आच्छादित कर देता है तथा उसे आह्लादक बना देता है। अतः नाटक में छन्दों की योजना की जाती है।

संस्कृत साहित्य में छन्दों के प्रकार के विषय में कहा जाय तो छन्द दो प्रकार के होते हैं– वैदिक छन्द व लौकिक छन्द। छन्द का लक्षण – ''जातिवृत्ताख्या मर्यादाच्छन्दः'' लौकिक छन्दों की रचना में चार चरण या पाद होते हैं– ज्ञेयः पादः चतुर्थांश इन पादों की रचना या तो अक्षरों की गणना के आधार पर होती है या फिर मात्राओं की गणना के आधार पर इस दृष्टि से छन्द प्रथमतः दो भेदों में विभक्त होता है। वृत और जाति (तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा – छन्दोमंजरी) जिन छन्दों के चरणों की रचना अक्षरों की गणना के अनुसार की जाती है वह वृत्त कहलाता है। जहां पादों (चरणों) की रचना, मात्राओं के आधार पर होती है वे जाति कहलाते हैं।

महाकवि कपिपुंगव हनुमान् ने भी 'हनुमन्नाटकम्' महानाटक में विविध छन्दों का प्रयोग किया है

स्रग्धरा, शार्दुलविक्रीडतम्, शिखरिणी, अनुष्टुप्, बसन्ततिलका, रथोद्धता, पुष्पिताग्रा, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, हरिणी, द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, मालिनी इत्यादि।

कवि का विशिष्ट छन्द शार्दूलविक्रीडत है क्योंकि कवि ने इसी छन्द का सर्वाधिक बार प्रयोग किया है।

1. शार्दूलविक्रीडितम्–

लक्षण – सूर्याश्वैर्मसजस्ततााः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्

अर्थात् जहां 12 और 7 अक्षरों के बाद विराम हो तथा मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण के पश्चात् एक गुरु हो, वहां शर्दूलविक्रीडत छन्द होता है।

शार्दूलविक्रीडित छन्द के उदाहरण बारहवें अंक को छोड़कर सभी अंकों में है। कवि ने प्रस्तुत नाटक में लगभग 150 बार इस छन्द का प्रयोग किया गया है, यथा–

लंकायाः कृतवानयं हि विकृतिं दग्धाऽग्रपुच्छः पुरा
कोऽप्येष प्रतिभाति बालिसदृशा नूनं तदीयः सुतः।
श्यामः कामसमाकृतिः शरधनुर्वारो स सीताप्रियः
प्रत्येकं रिपुमैक्षतीति निगदन् मंचस्थितो रावणः।। (ह.ना. 9.2)

2. स्रग्धरा–

लक्षण – म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा क्रीर्तितेयम्

अर्थात् जिस छन्द के चारों चरणों में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण के संयोजन से इक्कीस वर्ण होते हैं तथा सात–सात अक्षरों पर यति होती है उसे स्रग्धरा छन्द कहते हैं–

हनुमन्नाटक में भी स्रग्धरा छन्द का प्रयोग सभी अंकों में किया गया है। यथा–

पश्य श्रीरामचन्द्रः त्वदभिमतमहो! लक्ष्मणेनापि पूर्णे
तूर्णंरंगावतारेऽवतरतु स भवानाहतो येन तातः।
सुग्रीवेणाऽऽंजनेय प्रमुख भट चमूचक्रवालेन सार्धं
त्वामेकेनाऽंगदोऽहं पितृनिधनमनुस्मृत्य मथ्नामि दोष्णा।। (ह.ना. 14.73)

3. शिखरिणी

लक्षण रसैरूद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी

अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में 6 (छठे) एवं 11 (ग्यारहवे) अक्षर के बाद विराम आए और य–म–न–स–भगण के बाद एक–एक अक्षर क्रमशः लघु और गुरु हो वह सप्तदशाक्षरा वृत्ति शिखरिणी छन्द होता है।

महानाटक में भी प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, दसम अंकों में उपर्युक्त छन्द का प्रयोग हुआ है। यथा –

भवित्री रम्भोरू! 'त्रि' दशवदनग्लानिरघुना
स ते रामः स्थाता ''न'' युधि पुरतो लक्ष्मण सखः।।
इयं यास्यत्युच्चै 'वि' पदमधुना वानर चमू
र्लधिष्ठेदं षष्ठाक्षरपरविलोपात् पठ पुनः।।

उपर्युक्त पद्य में 17 वर्ण हैं क्रमशः य, म, न, स, तथा भगण है अन्त में लघु तथा गुरु है अतः शिखरिणी छन्द है।

4. अनुष्टुप्–

लक्षण – श्लोके षष्ठं गुरूज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचकम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अर्थात् अनुष्टुप् छन्द (श्लोक) के प्रत्येक चरण में छठा अक्षर गुरु होता है तथा पांचवा अक्षर लघु होता है। दूसरे और चौथे पाद में सातवां अक्षर लघु होता है। पहले और तीसरे पाद में सातवां गुरु होता है। प्रस्तुत महानाटक में भी स्थान–स्थान पर अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है।

प्रथम अंक में राजा जनक सीता के प्रति देखकर खेद प्रकट करते हुए कहते –

माहेश्वरो दशग्रीवः क्षुद्राश्चाऽन्ये महीभुजः
पिनाकारोपणं शुल्कं हा सीते! किं भविष्यति।।

अर्थात् हे सीता प्रतिज्ञारूपी मूल्य तो केवल धनुष चढ़ा लेना है। हा सीते! अब तुम्हारी कौनसी गति होगी।

दशम अंक में रावण मायावी विद्या के द्वारा राम का रूप धारण कर जब सीता के सामने उपस्थित होते हैं सीता को सरमा के माध्यम से पता चलता है कि ये राम नहीं रावण ही माया को धारण कर राम का रूप धारण कर आया है। तो सीता विसाद के साथ कहती है–

हाऽऽकाश! हा धरणि! हा वरूणाऽर्क! वायो
वेत्स्यामि धर्म! कथमागतमात्मनाथम्।।

अर्थात् (सरमा के कहने से रावण को ही रामजी का स्वरूप धारण करने वाला जानकर, दुःखित हो) हा आकाश! हा पृथ्वी! हा सूर्यः हा पवन! हा धर्म! मैं कैसे पहचानूंगी कि प्राणनाथ आए हैं।

आकाशे–

मन्दोदरी रधुशराहतराक्षसेन्द्रं
चुम्बिष्यति त्वमपि वेत्स्यसि तत्र रामम्।। (ह.ना. 10.22)

अर्थात् जिस समय रामजी के बाण से मृत हुए रावण को मन्दोदरी चुम्बन करेगी उस समय आप भी रामजी को पहचान लेगी।

उपर्युक्त पद्य में छठा वर्ण दीर्घ है। पांचवा वर्ण ह्रस्व है व आठ–आठ वर्ण का क्रम है अतः अनुष्टुप् छन्द है।

5. वसन्ततिलका–

लक्षण – ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः

अर्थात् प्रत्येक चरण में तगण–भगण–जगण–जगण और अन्त में दो गुरु वर्णों की योजना होने से चतुर्दशाक्षरा छन्द रूप में वसन्ततिलका नामक छन्द होता है।

प्रस्तुत नाटक में भी सप्तम अंक को छोड़कर सभी अंकों में यह छन्द है। चतुर्दश अंक में अंगद श्रीराम से कहते हैं कि मैं अपने पिता (बाली) की मृत्यु के वैर को याद करके अपनी भुजा से चूर कर डालुंगा। यथा–

श्रुत्वाऽंगदस्य महतीं समरप्रतिज्ञां
ते चुक्षुभुः कपिचमूपतयः स–रामाः।
सौमित्रिरप्यनपराधिनमाहतं तं
मत्वा कृतांजलिपुटः पुरतो बभूव।। (ह.ना. 14.74)

अर्थात् अंगद की ऐसी भीषण युद्ध–प्रतिज्ञा को सुनकर, रामजी के सहित वे सभी वानर सेनापति क्षुब्ध हुए। तब लक्ष्मण जी उस बालि को निरपराध मारा गया जानकर, हाथ जोड़ कर, अंगद के सामने आये।

तदा च

आकाश वाण्यभवदेवमहो! स बाली
दाशो हनिष्यति पुनर्मथुरावतारे!
श्रुत्वा विलोक्य रघुनन्दनवानराणां
कारूण्यमंजलिपुटं स रणान्निवृत्तः।। (ह.ना. 14.75)

अर्थात् इस प्रकार आकाशवाणी हुई कि अरे अंगद! वही बालि व्याध रूप में, फिर मथुरा में अवतार लेने पर मारेगा, ऐसा सुनकर और रामजी तथा वानरों को दीन हो हाथ जोड़े देखकर, अंगद ने लड़ने का विचार छोड़ दिया।

उपर्युक्त पद्य में तगण, भगण, जगण, जगण के क्रम से अन्त में दो गुरु वर्ण हैं अतः वसन्ततिलका छन्द है।

6. रथोद्धता –

लक्षण– रात् परैर्नरलगै रथोद्धता।

अर्थात् जहां रगण–नगण–रगण के बाद एक–एक अक्षर लघु और गुरु का हो तथा प्रत्येक चरण में ग्यारह–ग्यारह अक्षर हों, वहां रथोद्धता छन्द होता है। छन्द त्रिष्टुप् जति का है।

यथा– यद्धभंज जनकात्मजाकृते, राघवः पशुपतेर्महद्धनुः।
तद्धनुर्गुणरवेण रोषितस्त्वाजगाम जमदग्निजो मुनिः (ह.ना. 1/29)

अर्थात् महाराज ने जो सीताजी के लिए शिवजी का भारी धनुष तोड़ दिया तो उस घनुष की प्रत्यंचा के शब्द से क्रोधित होकर जमदग्नि के पुत्र परशुराम मुनि आ गये।

उपर्युक्त पद्य में रगण–नगण–रगण के बाद एक अक्षर लघु व एक गुरु वर्ण है अतः रथोद्धता छंद है।

7. पुष्पिताग्रा–

लक्षण– अयुजि नयुगरेफतो यकारो
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।

अर्थात् पुष्पिताग्रा छन्द के विषम (पहले और तीसरे) चरणों में न–न–र–यगण हो अर्थात् 12 अक्षर हो सम (दूसरे और चौथे) चरणों में न–ज–ज–रगण के बाद एक अक्षर गुरु हो अर्थात् 13 अक्षर हों।

उपर्युक्त छन्द का प्रयोग प्रथम अंक के पद्य नं. 9 में तथा चतुर्दश अंक के पद्य नं. 49 व 92 में प्रयोग है।

यथा– रावण के मरने के पश्चात् मन्दोदरी बिलखती हुई कहती है कि जिनका किला त्रिकुट पर्वत हो, सागर ही (राज्य की खाई हो योद्धा राक्षसगण हो, जिनके धन साक्षात् कुबेर हो जिनके मुंह में संजीवनी विद्या हो – ऐसा रावण भी काल के वशीभूत हो आज नष्ट हो गये – फिर रावण की दशा देखकर मन्दोदरी कहती है–

इह खलु विषमः पुराकृतानां
भवित हि जन्तुषु कर्मणा विपाकः।
शिवशिरसि शिरांसि यानि रेजुः
शिव! शिव! तानि लुठन्ति गृधपार्दः।। (ह.ना. 14/49)

अर्थात् यह अटल सिद्धान्त है कि जीवधारी को इस लोक में पहिले के किए हुए कर्मों का दारूण परिणाम (बाद में) अवश्य भोगना पड़ता है जो शिर (पहिले) शिवजी के मस्तक पर सुशोभित हुए थे, वे ही शिर–शिव! शिव! (अफसोस) (आज) गिद्धों के पैरों से ठोकर खाकर लुड़कते हैं।

उपर्युक्त पद्य में प्रथम व तृतीय चरण में 12 (बारह) वर्ण हैं व सम द्वितीय व चतुर्थ चरणों में 13–13 वर्ण के क्रम से न–ज–ज–रगण के बाद एक अक्षर गुरु है अतः पुष्पिताग्रा छन्द है।

8. वंशस्थ छन्द –

लक्षण – जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ

वंशस्थ छन्द के प्रत्येक पाद में 12 वर्ण होते हैं। क्रमशः जगण, तगण, जगण और रगण होता है इसका छन्दोमंजरी में लक्षण इस प्रकार है। वदन्ति संशस्थविलं जतौ जरौ। इसे ही वंशस्तनित एवं वंशस्थविल भी कहते हैं।

प्रस्तुत नाटक में भी षष्ठ व सप्तम अंक में तीन पद्यों में उपर्युक्त छन्द का प्रयोग किया गया है।

हनुमान् जी लंका को अच्छी तरह जलाकर, हनुमान् जी की पूंछ से निकला हुआ और आकाश तक उठा हुआ अग्नि ऐसा शोभित हुआ मानो रामजी के भय से दशकण्ठ रावण का प्रताप आकाश में भागा जा रहा। इस प्रसंग के पश्चात् वंशस्थ छन्द का उदाहरण है यथा–

फलानि भुक्त्वा चपलः पलाशिनां
हुताशनस्तृप्तिमुपागतः पराम।
विराजते स्म प्रतियातनाछला
ज्जलानि चाऽब्धौ तृषितः पिबन्निव।। (ह.ना. 6.26)

अर्थात् चंचल अग्नि मांसाहारी राक्षसों के मांस को खाकर परम तृप्त हुआ। अग्नि की लपटों की परिछांही समुद्र में पड़ रही है तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि (भर पेट मांस खाने के बाद) प्यास लगने पर, अपने प्रतिबिम्ब के रूप में मानो सागर में जल पी रहा है ऐसा वह शोभित हुआ।

उपर्युक्त पद्य में चारों चरणों में 12 वर्ण है तथा ज–त–ज–रगण के क्रम से है। अतः वंशस्थ छन्द है।

9. हरिणी

लक्षण – न स म र स ला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।

अर्थात् हरिणी नामक छन्द में नगण–सगण–मगण–रगण–सगण के बाद एक–एक अक्षर क्रमशः लघु और गुरु का होता है। इसके प्रत्येक चरण में 17 अक्षर और छठे (6) चौथे (4) सातवें (7) वर्ण के बाद विराम या यति होती है।

प्रस्तुत नाटक में चतुर्दश अंक में एक जगह प्रयोग हुआ है यथा –

रामः
जनकतनयां ह्रत्वा रागी हते दशकन्धरे
तदनु विरहज्वालाजाला कुलीकृत विग्रहः
रघुपरिवृढो नाधो नोर्ध्वं न तिर्यगवेक्षते
मुकुलित दृगम्भोज द्वन्द्वः समाहितवत् स्थितः (ह.ना. (14.50)

अर्थात् जनक कुमारी के अपहरण कर ले जाने वाले दशानन को मार कर तत्पश्चात् (सीता जी के) वियोगानल की लपट से शरीर में विकलता होते हुए भी

अनुरागी रघुकुलाग्रगण्य रामजी न नीचे, न ऊपर और न तिरछी नजर से देखते हुए – दोनों नेत्रपद्यों को बन्द कर समाधिमग्न के समान हो गये।

उपर्युक्त पद्य में 17 अक्षर हैं छठे, चौथे व सातवें वर्ण के बाद विराम या यति है अतः हरिणी छन्द है।

10. द्रुतविलम्बित –

लक्षण – द्रुतविलाम्बितमाह नभौ भरौ।

अर्थात् द्रुतविलम्बित नामक छन्द के प्रत्येक चरण में 12 अक्षर और न–भ–भ–रगण व्यवस्था होती है।

प्रस्तुत नाटक में चतुदर्श अंक में एक स्थान पर प्रयोग हुआ है यथा–

सुग्रीवः

इयमियं मयदानवनन्दिनी
त्रिदशनाथजितः प्रसवस्थली।
किमपरं दशकन्धरगोहिनी,
त्वयि करोति करद्वययोजनम्।। (ह.ना. 14.58)

(सुग्रीव रामजी से कहते हैं) महाराज! यह (सामने खड़ी हुई) मयदानव की राजकुमारी, इन्द्रविजेता मेघनाद की राजमाता और दूसरे शब्दों में रावण की रानी (मन्दोदरी) आपको युगल कर जोड़कर प्रणाम करती है।

उपर्युक्त पद्य के प्रत्येक चरण में 12 अक्षर हैं और न–भ–भ–रगण की व्यवस्था है अतः द्रुतविलम्बित छन्द है।

11. प्रहर्षिणी –

लक्षण – त्र्याशार्भिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्

अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में म–न–ज–रगण के बाद एक अक्षर गुरु हो तीसरे और दसवें वर्ण पर यति या विराम हो तथा प्रत्येक चरण में कुल तेरह अक्षर हों, उसे प्रहर्षिणी छन्द कहते हैं।

प्रस्तुत महानाटक में चतुर्दश में उपर्युक्त छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत पद्य में रावण को मारकर सीता को प्राप्त कर श्रीराम जी कहते हैं–

प्राचीनस्मृत–विरहव्यथातिभीतः
काकुत्स्थः कृतकुतुकाक्षिमीललीलः।
सम्पूर्णे शशिनि चिराय लग्नदृष्टेः
प्रेयस्याः स्थगयति लोचने कराभ्याम्।। (ह.ना. 14.64)

अर्थात् पूर्ण चन्द्र की ओर देर तक एकटक नजर लगाए रहने वाली प्रियतमा की दोनों आंखों को अपने दोनों हाथों से – कौतूहल के कारण आंखमिचौली का खेल खेलने वाले रामजी ने – इसलिए ढक लिया कि वे पहले की बात (सोने के मृग को देखने की घटना) की याद करके वियोग की पीड़ा से सहम गये (कि यदि सीताजी ने चन्द्रमण्डल का मृग मांगा हो दीर्घकालीन वियोग हो जायेगा।

उपर्युक्त पद्य में प्रत्येक चरण में 13–13 वर्ण हैं तथा म–न–ज–रगण के क्रम में अन्तिम वर्ण गुरु है। अतः प्रहर्षिणी छन्द है।

12. मन्दाक्रान्ता

लक्षण – मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।

अर्थात् अत्यष्टि (17 वर्ण के बाद वाली) जाति का ही मन्दाक्रान्ता छन्द है। इसमें म–भ– न–त–तगण व्यवस्था के बाद दो अक्षर गुरु होते हैं चौथे (4) छठे (6) एवं सातवें (7) के बाद यति होती है।

हनुमन्नाटक में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पंचम, अष्टम, एकादश, द्वादश, त्रयोदश व चतुर्दश अंकों में उपर्युक्त छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रथम अंक में श्रीराम द्वारा जब शिव धनुष तोड़ दिया जाता है उसके पश्चात् परशुराम आते हैं श्रीराम व परशुराम का संवाद होता है। श्रीराम कहते हैं कि मैं आप पर धनुष नहीं चलाऊंगा – यही प्रसंग है।

जातः सोऽहं दिनकरकुलेक्षत्रियः श्रोत्रियेभ्यो
विश्वामित्रादपि भगवतो दृष्टदिव्यास्त्रपारः।
आस्मिन्वंशे कथयतु जनो दुर्यशो वा यशो वा
विप्रेशस्त्रग्रहणगुरूणः साहसिक्याद्बिभेमि।। (ह.ना. 1.42)

श्रीराम कहते हैं कि मैं तो ब्राह्मण पर शस्त्र उठाने के बड़े भारी साहस कर्म से डरता हूं।

उपर्यक्त पद्य में 17 वर्ण हैं म–भ–न–त–त के क्रम से अन्त में दो गुरु वर्ण हैं अतः मन्दाक्रान्ता छन्द है।

13. मालिनी

लक्षण – ननमयययुतेयं मालिनी भौगिलोकैः।

अर्थात् मालिनी छन्द के प्रत्येक पाद में नगण–नगण–मगण–यगण और यगण के क्रम से 15 वर्ण होते हैं इसमें 8–7 पर यति होती है। भोगि आठवें तथा लोक सातवें वर्ण पर यति होती है।

प्रस्तुत नाटक के अंक संख्या 1, 2, 3, 6, 7, 8, 10, 11, 13, 14 में मालिनी छन्द के उदाहरण हैं। तृतीय अंक में श्रीरामचन्द्र जी सीता से कहते हैं कि आप महल में भी नहीं टहलती थी अब झाड़ी, गुफा, पहाड़ी, झरने, नदीवाले उन–प्रदेशों में कैसे चल सकोगी जहां काले डरावने जीव जानवर रहते हैं।

अधोलिखित पद्य में श्रीराम माता पृथ्वी से प्रार्थना करते हैं और कहते हैं यथा–

अरूणदलनलिन्या स्निग्धेपादारविन्दा
कठिनतनुधरण्यां यात्यकस्मात्स्खलन्ती।
अवनी! तव सुतेयं पादविन्यासदेशे
त्यज निजकठिनत्वं जानकी यात्यरण्यम्।। (ह.ना. 3.15)

अर्थात् हे पृथ्वी! तू अपनी पुत्री के पैर रखने के स्थल पर कठोरता दूर कर दे क्योंकि यह जानकी जंगल में जा रही है।

पाथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छमाना
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये! तवेति।
स्मितविकसितगण्डं व्रीडविभ्रान्तनेत्रं
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता (ह.ना. 3.16)

उपर्युक्त दोनों पद्यों में मालिनी छन्द है।

14. इन्द्रवज्रा

लक्षण – स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

अर्थात् इन्द्रवज्रा छन्द के प्रत्येक चरण में तगण–तगण और जगण के बाद दो अक्षर गुरु होते हैं इस प्रकार इसके प्रत्येक चरण में 11 अक्षर होते हैं।

प्रस्तुत नाटक में भी प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, नवम, दशम अंकों में इस छन्द का प्रयोग है। षष्ठ अंक का प्रसंग है–

रामात्परः शूरतरो न कश्चित्
पराजयः स्त्रीहरणान्न चाऽन्यः।
तथाऽपि नाऽब्धिं प्रविवेश रामा
बबन्ध सेतुं विजयासहिष्णुः।। (ह.ना. 5.61)

अर्थात् राम से बढ़कर दूसरा कोई शूरवीर न था और स्त्री के अपहरण से बढ़कर (शूरों के लिए) कोई दूसरी पराजय भी न हो सकती थी फिर भी विजय में असहनशील राम ने (लज्जा के कारण) जलनिधि में प्रवेश नहीं किया बल्कि (शौर्य प्रदर्शन के निमित्त) उस पर पुल बंधवा दिया।

उपर्युक्त पद्य में त–त और जगण के बाद दो अक्षर गुरु हैं। अतः इन्द्रवज्रा छन्द है।

15. उपजाति

लक्षण – अनन्त रोदीरिताक्ष्मभाजौ, पादों यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जातिष्विदमेवनाम।।

उपजाति के प्रत्येक पाद में 11 वर्ण होते हैं। यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्दों के मिश्रण में बनता है किसी चरण में इन्द्रवज्रा छन्द होता है और किसी में उपेन्द्रवज्रा छन्द होता है।

प्रस्तुत नाटक में भी तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, एकादश, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश अंकों में उपर्युक्त छन्द का प्रयोग है।

गुरोर्गिरा राज्यमपास्य तूर्णं वनं जगामाऽथ रघुवीरः।
निषंगपृष्ठः शरचापहस्तस्तं लक्ष्मणो गामिवबालवत्सः।। (ह.ना. 3.10)

सुवर्ण पुंखाः सुभटाः सुतीक्ष्णा,
वज्रोपमा वायुसमानवेगाः।
यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणाः
प्रदीयतां दाश रथाय सीता।। (ह.ना. 7.8)

उपर्युक्त पद्यों में उपजाति छन्द है।

(ख) हनुमन्नाटक में अलंकार योजना

आचार्य दण्डी के 'काव्यादर्श' से लक्षण वाक्य उद्धृत किया है यथा – ''काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते'' अर्थात् काव्य की शोभा करने वाले धर्मों को ..... (दण्डी) अलंकार कहते हैं।

आचार्य वामन ने सर्वप्रथम स्पष्ट करते हुए कहा – काव्यशब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोवर्तते''। अर्थात् गुण तथा अलंकार को सुसंस्कृत शब्द और अर्थ का सन्निवेश ही काव्य कहलाता है। काव्य की आत्मा में गुण शौर्यादि की तरह नित्य धर्म के रूप में रहते हैं परन्तु अलंकार काव्य के अनित्य धर्म माने गये हैं, क्योंकि अलंकार कभी तो काव्य की शोभा बढ़ाते हैं, परन्तु कभी वैचित्र्यजनक होते हैं। गुण आत्मा का उत्कर्ष बढ़ाते हैं लेकिन अलंकार शब्दार्थ रूपी अंगों के द्वारा काव्य की शोभा बढ़ाते हैं।

आचार्य मम्मट ने भी अलंकारों को लक्ष्य करके कहा–

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽंगद्वारेण जातुचित्।
हारादिवलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ।। (का. प्र. सू. 87)

अर्थात् जो काव्य में विद्यमान उस (अंगी रस) को शब्द तथा अर्थरूप अंगों के द्वारा (नियोजन अथवा सर्वथा नहीं अपितु) कभी–कभी उपकृत (उत्कर्षयुक्त) करते हैं वे अनुप्रास और उपमा आदि (शब्दालंकार तथा अर्थालंकार शरीर के शोभाधान द्वारा परम्परया शरीरी आत्मा के उत्कर्षजनक) हार आदि (दैहिक अलंकारों) के समान (काव्य के) अलंकार होते हैं।

अर्थात् हार आदि कण्ठ–वक्ष आदि अंगों पर धारण करने से शरीर की शोभा बढ़ाते हैं। उसी प्रकार काव्य में शब्द–अर्थ के द्वारा अलंकार शोभादायक होते हैं

अलंकार शब्द की व्युत्पति दो तरह से की जाती है –

1. अलंक्रियतेऽनेनेति करणप्रधानव्युत्पत्याऽलंकारः शरीरसुषमाधायकत्वेन हारादीनामिव काव्यशोभासम्पादकत्वेन अनुप्रासोपमादीनामलंकाराणां वाचकः
2. अलंकारोतीति अलंकृतीति अलंकरणं वाऽलंकार इति

भावप्रधानोऽलंकारः शब्दः साहित्यशास्त्रस्यापर पर्यायः।

अर्थात् अलम् उपसर्ग के योग से 'डुकृंकरणे' धातु से घञ् प्रत्यय लगाने से अलंकार शब्द निष्पन्न होता है।

हनुमन्नाटक में कपिपुंगव हनुमान् की अलंकार योजना स्वाभाविक है कहीं भी कवि को अलंकार भार स्वरूप प्रतीत नहीं होते। कवि को अत्यन्त सहज रूप में उनका ग्रहण होता है। कथा के प्रवाह में अलंकार कहीं भी बाधक नहीं हैं। कवि हनुमान् ने हनुमन्नाटक में अनेक अलंकारों की योजना की है। उनमें अनुप्रास, यमक, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, अप्रस्तुत, अतिशयोक्ति, मालोपमा, उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, सन्देह तुल्ययोगिता इत्यादि हैं।

1. अनुप्रास –

लक्षण – अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्। (आ. विश्वनाथ)

अर्थात् स्वरों की विषमता होने पर भी व्यंजन वर्ण की साम्य या सदृशता होने पर अर्थात् आवृत्ति होने पर अनुप्रास अलंकार होता है। स्वरों की विषमता होने पर भी कथन से यह संकेत किया गया है कि स्वरों की समानता भी रहे, परन्तु मुख्य रूप से व्यंजन वर्णों की समानता होनी चाहिए। अनुप्रास शब्द में अनु+प्र उपसर्ग लगे हैं तथा भाव रूप में आस शब्द का न्यास रूप में प्रयोग हुआ है।

उदाहरण –

चक्रक्रीडाकृतान्तस्तिमिरचय चमूस्फारसंहार चक्रं
कान्तासंयोगसाक्षी गगनसरसि यो राजते राजहंसः।
सम्भोगाम्भकुम्भः कुमुदवनबधूबोधनिद्रादरिद्रो
देवः क्षीरोदजन्मा जयति रतिपतेर्बाण निर्माण शाणः।। (ह.ना. 1.9)

अर्थात् उपर्युक्त पद्य में म्भ, म्भ, म्भ वर्णों की, क्र, क्र, क्र वर्णों की आवृति है अतः अनुप्रास अलंकार है।

2. यमक –

लक्षण – सत्यर्थेपृथगर्थायाः स्वरव्यंजन संहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते।। (साहित्य दर्पण)

सत्यर्थे अर्थात् सार्थक या परस्पर भिन्नार्थक स्वर–व्यंजन समूह की उसी क्रम से आवृत्ति होने पर यमक अलंकार होता है। यमक का अर्थ है युग्म या युगल समान जातीय तथा आकार को यमक कहते हैं। काव्य में समान स्वरव्यंजक समुदाय की एक बार आवृत्ति होने पर यमक अलंकार होता है। इसमें आवृत्ति वाले स्वर व्यंजन समूह में कहीं पर दोनों पदसमूह सार्थक रहते हैं और कभी एक सार्थक तथा

दूसरा निरर्थक रहता है, अथवा दोनों ही निरर्थक रहते हैं परन्तु उनकी आवृत्ति पूर्वक्रम से ही होनी चाहिए।

लक्षण में 'सत्यर्थे' का आशय यही है कि दोनों वर्ण समूह चाहे सार्थक हो या निर्थक, परन्तु उसी क्रम से उनकी आवृत्ति हो।

उदाहरण –

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे
यदि मन पतिभावो राघवादन्यपुंसि।
तदिह दह ममाऽगं पावकं पावकं! त्वं
सुकृत दुरितभाजां त्वं हि कर्मैकसाक्षी। (ह. ना. 14.54)

उपर्युक्त पद्य में पावकं पावकं यमक अलंकार है।

3. श्लेष –

लक्षण – श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इत्यते। (सा.द.)

अर्थात् अनेक अर्थों को व्यक्त करने वाले श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग होने पर श्लेष अलंकार होता है। 'श्लिष्ट' का आशय है कि अर्थ की दृष्टि से जिसके अनेक अर्थ व्यक्त हों, जिसमें अनेक अर्थ सम्मिलित हो। यह अनेक प्रकार का माना जाता है।

उदाहरण –

एकेनाऽक्ष्णा प्रविततरूषा वीक्षते व्योमसंस्यं
भानोर्बिम्बं सजलगालितेनाऽपरेणाऽऽत्म कान्तम्।
अह्लश्छेदे दयितविरहाशंकिनी चक्रवाकी
द्वो संकीर्णों विसृजति रसौ रौद्र–कारूण्यसंज्ञौ।। (ह. ना. 12.17)

जिस तरह चकई–दिन के ढलने पर अपने प्रियतम के वियोग की आशंका से, क्रोध से भरी हुई एक आंख से आकाश में स्थित सूर्य के बिम्ब (अस्त होते हुए सूर्य की लाली को) और आंसू भरे हुई दूसरी आंख से अपनी पति को निहारती है। उसी तरह लक्ष्मण जी की एक नजर सायंकाल के समय अस्ताचलगामी सूर्य के बिम्ब पर पड़ रही पद्य के दो अर्थ हैं अतः श्लेष अलंकार है।

श्लेष के अन्य उदाहरण –

एषा पंचवटी रघुत्तममकुटी यत्राऽस्ति पंचावटी
पान्थस्यैकघटी पुरस्कृततटी संश्लेष शिलौ वटी
गोदा यत्र नटी तरंगिततटी कल्लोल चंचत्पुटी
दिव्यामोदकुटी भावाब्धिशकटी भूतक्रियादुष्कुटी।। (ह.ना. 3.22)

पांचों पेड़ों की जड़ (पंचवटी में) सरस्वती के पांच कुण्ड हैं दूसरा अर्थ पृथ्वी, जल, तेज वायु, आकाश रूप पांच तत्त्वों की लय करने वाली अर्थात् मोक्षदायिनी है। यहां आकर दुबारा पंचभौतिक शरीर नहीं धारण करना पड़ता है। अतः श्लेष है।

4. अर्थान्तरन्यास –

लक्षण –

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्र सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा (का.प्रा.)

साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा सामान्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से समर्थन हो, अर्थात् उपपति द्वारा दृढ़करण होता है। अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यह अलंकार आठ प्रकार का होता है।

उदाहरण –

शस्त्रौघप्रसरेण रावणिरसौ यद्दुर्यशोभागिनं
चक्रे गौतमशापयन्त्रित भुजस्येमानमाखण्डलम्।
कक्षागर्तकुलीरतां गमयता वीर! त्वया रावणं
तत्संमृष्टमहो! विशल्यकरणी जागर्ति सत्पुत्रता।। (ह.ना. 5.55)

5. काव्यलिंग –

लक्षण – हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगमुदाहृतम् (विश्वनाथ)

अर्थात् जहां वाक्यार्थ या पदार्थ का हेतु रूप से कथन किया जाता है वहां काव्यलिंग अलंकार होता है।

उदाहरण –

वदनममृतरश्मिं पश्य कान्ते! तपोर्व्या
मनिलतुलदण्डेनाऽस्य वार्धौं विधाता।
स्थितमतुलय दिन्दुः खेचरोऽभूल्लघुत्वा
त्क्षिपति च परिपूर्त्यै तस्य ताराः किमेताः।। (ह.ना. 2.26)

हे वरवर्णिनि! देखो जब विधाता ने तुम्हारे मुंह को और अमृतमय किरण वाले चन्द्रमा को वायुरूपी तराजू के पलड़े पर रखकर तौला तो (भारी होने के कारण) तुम्हारा मुंह धरती पर रह गया और हल्का होने की वजह से दूसरा पलड़ा आकाश में उठ गया तो चन्द्र आकाश में चला गया।

6. अप्रस्तुतप्रशंसा –

लक्षण – अप्रस्तुतप्रशंसा स्यादपक्रान्तेषु या स्तुतिः
तन्मुखेन प्रस्तुतस्य निन्दा यत्र प्रतीयते।। (दण्डी)

जहां अप्रस्तुत की स्तुति हो और उससे प्रस्तुत की निन्दा प्रतीत होती होवे वहां अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होता है।

उदाहरण –

चन्द्रश्चण्डकरायते मृदुगतिर्वा तेऽपि वज्रायते
माल्यं सूचिकुलायते मलयजो लेपः स्फूलिंगायते।
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशात्प्राणोऽपि भारायते
हा हन्त! प्रमदावियोगसमयः संहारकालायते।। (ह.ना. 5.26)

मेरे लिए (शीत रश्मि) चन्द्रमा प्रचण्ड किरण वाले सूर्य के समान सन्तापदायक हो गया। धीमी–धीमी बहने वाली हवा वज्र के समान कठोर लगती है, फूलों का गजरा सूई के समान बेधता है, मलयाचल के चन्दन का लेप आग की चिनगारी की तरह जलता है, रात सैंकड़ों कल्प के समान कटती नहीं। (और को तो जाने दीजिए) मेरे दुर्भाग्य की बात है कि जीवन भी भार स्वरूप मालूम पड़ता है। ओह! हाय! प्रिया के वियोग का समय प्रलयकाल के समान व्यतीत होता है।

7. अतिशयोक्ति –

लक्षण – ''सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते'' (साहित्य दर्पण)

अर्थात् अध्यवसाय के सिद्ध अर्थात् निश्चित रूप से प्रतीत होने पर अतिशयोक्ति अलंकार कहा जाता है। प्रस्तुत उपमेय का निगरण करके अप्रकृत (उपमान) के साथ उस उपमेय के अभेद ज्ञान को अध्यवसाय कहते हैं।

उदाहरण – नीचैर्ववौ परिमितः पवनो वनेषु
मन्दीचकार तराणिः खरतां करेषु
रक्षःपतिं गगनमाप्तमवेक्ष्य साक्षा
न्नद्यो ययुः स्थगिततुंगतरंग भंगा।। (ह.ना. 14.13)

अन्य उदाहरण–

वक्त्रं वनान्ते सरसीरूहाणि, भृंगक्षमालां जगृहुर्जपाय
एणीदृशस्तेऽप्यवलोक्य वेणीभंग भुजंगाधिपति जुगोप

अर्थात् तुझ मृगनयनी के मुख को देखकर कमलों ने जल के भीतर जप के निमित, भौरे रूपी रूद्राक्ष की माला को वासुकी ने अपने शरीर को छिपा लिया। उपर्युक्त पद्य में अतिशयोक्ति अलंकार है।

8. मालोपमा –

लक्षण – मालोपमा यदेकस्योपमानं बहुदृश्यते'

अर्थात् जहां पर एक उपमेय के एकाधिक अर्थात् अनेक उपमान देखे जाते हैं, वहां मालोपमालंकार होता है।

माला में एक तरह के, अन्य तरह के या विविध प्रकार के पुष्प गुम्फित रहते हैं, उसी प्रकार एक ही वाक्य में उपमेय के लिए सजातीय विविध उपभावों की योजना की जाती है, तो वह माला के समान होने से मालोपमा अलंकार कहलाता है।

उदाहरण – क्रान्त्वा भूवलयं दशास्यदमन! त्वत्कीर्तिहंसी गता
साऽपि ब्रह्ममरालसंगमवशात्तत्रैव गर्भिण्यभूत।
यात्वा व्योमतरंगिणी परिसरे कुन्दावदातं तया
मुक्तं भाति विशांकुरं ततमिदं शीतद्युतेर्मण्डलम्।। (ह.ना. 14.79)

9. उत्प्रेक्षा –

लक्षण – सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्

अर्थात् उपमेय की उपमान के साथ सम्भावना करने को उत्प्रेक्षा कहते हैं। उत्प्रेक्षा का अर्थ है सम्भावना या कल्पना करना। सम्भावना को उच्च कोटि का संशय कहते हैं जो कि सदा अनिश्चयात्मक होता है।

उदाहरण– पित्र्यमंशमुपवीतलक्षणं मातृकं च धनुरूर्जितं दधत्।

यः ससोम इव धर्मदीधितिः स द्विजिह्व इव चन्दनद्रुमः।। (ह.ना. 1.31)

अर्थात् मानो चन्द्रमा के साथ सूर्य हो या चन्दन के पेड़ पर सांप।

10. दृष्टान्त –

लक्षण – दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुतः प्रतिबिम्बनम्

अर्थात् धर्म सहित उपमान और उपमेय का अथवा परस्पर सधर्म वर्णयविषयों का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने पर दृष्टान्त अलंकार होता है।

उदाहरण– फलानी भुक्त्वा चपलः पलाशिनां

हुताशनस्तृप्तिमुपागतः पराम।

विराजते स्म प्रतियातनाछला

ज्जलानि चाऽब्धौ तृषितः पिबन्निव।। (ह.ना. 6.26)

अर्थात् चंचल अग्नि मांसाहारी राक्षसों के मांस को खाकर परम तृप्त हुआ अग्नि की लपटों की परिछांही समुद्र में पड़ रही है तो ऐसा प्रतीत हो रहा कि (भरपेट मांस खाने के बाद) प्यास लगने पर अपने प्रतिबिम्ब के रूप में मानो सागर में जल पी रहा है– ऐसा वह शोभित हुआ।

उदाहरण –

मैनाकः किमयं रूणद्धि पुरतो मन्मार्गमव्याहतं

शक्तिस्तस्य कुतः स वज्रपतनाद्भीतो महेन्द्रादपि।

तार्क्ष्यः सोऽपि समं निजेन विभुना जानाति मां रावणं

हा! ज्ञातं स जटायुरेष जरसा क्लिष्टोवधं वांछति।। (ह.ना. 4.9)

अर्थात् क्या यह मैनाक है जो आगे आकर मेरे मार्ग को बेखटके रोक रहा? लेकिन उसकी ताकत इतनी कहां? क्योंकि वह तो इन्द्र के वज्र–प्रहार से डर कर भाग गया था। तब क्या यह गरूड़ है? किन्तु वह भी तो अपने स्वामी विष्णु सहित मुझ रावण को अच्छी तरह जानता है? ओ हो! जान लिया यह वह जटायु है जो बुढ़ापे से लाचार होकर मरना चाहता है। अतः उपर्युक्त पद्य में अप्रस्तुत का निश्चयात्मक ज्ञान होने से भ्रान्तिमान है।

11. सन्देह –

लक्षण – सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्त्थतः।
भेदोक्तौ तदनुक्तौ च द्विधाऽसौ परिकीर्तितः।।

अर्थात् उपमेय में उपमान के संशय को सन्देह अलंकार कहते हैं परन्तु यह संशय कवि प्रौढ़ोक्तिजन्य होना चाहिए। अर्थात् कवि–प्रतिभा से कल्पित एवं चमत्कार युक्त होना चाहिए।

उदाहरण–

अब्धिः किं वडवानलेन? तरणेर्बिम्बेन किं चाऽम्बरं?
मेघः किं चपलाचयेन? शशिभृत् किं भालनेत्रेण वा?।
कालः किं? क्षयपल्गिनरेन्द्रधनुषा धाराधरः किं महान्?
मेरूः किं ध्रुवमण्डलेन स? कपिः पुच्छेन खे राजते।। (ह.ना. 6.28)

अर्थात् क्या यह सागर है तो वडवाग्नि से शोभित हो रहा है? या आकाश है जो सूर्य के बिम्ब (मण्डल) से प्रकाशित हो रहा है, या मेघ है जो बिजली के समूह से प्रदीप्त हो रहा है? या चन्द्रशेखर शिवजी है जो तीसरे नेत्र से शोभित हो रहे हैं? या महाकाल है जो प्रलयाग्नि से शोभित हो रहे हैं? या मूसलाधार वर्षा करने वाला मेघ है जो इन्द्र धनुष से शोभित हो रहा है? या सुमेरू पर्वत तो नहीं है जो उत्तरी ध्रुव मण्डल से प्रकाशित हो रहा है। अर्थात् सन्देह बना ही रहता है अतः सन्देहालंकार है।

12. उपमा –

लक्षण – प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते।

अर्थात् अति स्पष्ट और सुन्दर सादृश्य वर्णन होने पर उपमालंकार कहलाता है।

उदाहरण– गुरोर्गिरा राज्यमपास्य तूर्ण, वनं जगामाऽथ रघुप्रवीरः
निषंग पृष्ठः शरचापहस्तस्तं लक्ष्मणो गामिव बालवल्सः।। (ह.ना. 3.10)

अर्थात् वन में श्रीरामजी के पीछे लक्ष्मणजी इस प्रकार गये जैसे गाय के पीछे छोटा बछड़ा जाता है।

13. तुल्ययोगिता –

लक्षण – पदार्थानां प्रस्तुतनामन्येषां वा यदा भवेत्।

एकधर्मभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता।। (विश्वनाथ)

जहां पर केवल प्रस्तुत पदार्थों का अथवा केवल अप्रस्तुत पदार्थों का एक ही धर्म से सम्बन्ध वर्णित हो वहां तुल्ययोगिता अलंकार होता है।

उदाहरण– अरूणदलनलिन्या स्निग्ध पादारविन्दा

कठिनतनुधरण्यां यात्यकस्मात्स्खलन्तो

अवनि! तव सुतेयं पादविन्यास देशे

त्यज निजकठिनत्वं जानकी यात्यरण्यम्।। (ह.ना. 3.15)

षष्ठ अध्याय

(क) सन्देश –

मनुष्य ही नहीं कोई भी निरूद्देश्य किसी भी कार्य में प्रवृत नहीं होता है। सभी अपनी–अपनी स्थितियों एवं बौद्धिक सोच के अनुसार स्व–स्व लक्ष्यों को आधार बनाकर जीवन रूपी नौका द्वारा संसार रूपी महासागर के दुःखों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए आनन्द की खोज में प्रवृत होता है। फिर मनुष्य जैसे बुद्धिमान प्राणियों के निरूद्देश्य जीवन की कल्पना करना भी कुछ अटपटा सा ही लगेगा। मनुष्यों में भी कवियों, चिंतकों, लेखकों के निरूद्देश्य जीवन की कल्पना मूर्खतापूर्ण कथन होगा। अर्थात् विद्वान् लेखक आदि अपने–अपने जीवन का कोई न कोई उद्देश्य लेकर चलते हैं, उस उद्देश्य की पूर्ति के द्वारा वे संसार को कुछ न कुछ संदेश दे ही जाते हैं।

हनुमन्नाटकम् के लेखक कपिपुंगव हनुमान् ने भी ह. ना. जैसी श्रेष्ठ रचना के द्वारा समाज किंवा संसार को संदेश देने का महान् प्रयास किया है, जिसमें वे नितान्त सफल भी रहे हैं। ह.ना. यद्यपि एक महानाटक, जिसे सामान्यतः लोकरंजन के लिए एक श्रेष्ठ साधक मात्र माना जाता है फिर भी कवि महान् उद्देश्यों को लेकर चलने वाला होता है। वह अपनी कृति के माध्यम से निश्चित ही कुछ अघटित अपरिमिता सर्वथा नवीन सामान्य जन के उत्प्रेरक संदेशों को दे ही जाता है।

कपिपुंगव हनुमान् की इस परम्परा का निर्वहन करने वाले महामनीषी और श्रेष्ठ चिंतक के रूप में कार्य करते हुए ह.ना. के माध्यम से सारे संसार को भारतीय संस्कृति के उदात संदेशों को अनेक अवान्तर कथानकों के माध्यम से मानो साक्षात् संदेश देते हुए कह रहे हैं कि भारतीय संस्कृति जैसी अन्य कोई भी संस्कृति संसार में नहीं है जो सम्पूर्ण मानवता के लिए सदैव कुछ अच्छा करने के लिए तत्पर रहती है। 'महानाटक' में जो संदेश हमें प्राप्त होते हैं उन्हें यहां कुछ बिन्दुओं के रूप में समझ सकते हैं, जो इस प्रकार हैं।

1. बड़ों का सम्मान करना – हनुमन्नाटक का अध्ययन करने पर पता चलता है कि प्रथम अंक में जब श्रीराम शिवधनुष तोड़ते हैं तो परशुराम क्रोधित हो जाते हैं। श्रीराम क्षत्रिय होते हुए भी इस महानाटक में लड़ते हुए नहीं दिखाया गया है और

श्रीराम ने कहा मैं ब्राह्मण पर अपना धनुष नहीं चलाऊंगा। नाटक के प्रथम अंक के अन्त में तो श्रीराम ने जमदाग्निसूनु परशुराम का अवतार जानकर, बड़ी दृढ़ता से हृदय से लगाकर अपने महान् तेज को उनमें स्थापित करके क्षत्रियों के वध व्यापार से निवृत हो गये–

ज्ञात्वाऽवतारं रघुनन्दस्य
स्वकीयमालिंगय ततोऽवगाढम्
विन्यस्य तस्मिंजमदग्नि सूनु
स्तेजो महत्क्षत्र वधान्निवृत्तः।। (ह.ना. 1.56)

2. मृदुभाषी होने का सन्देश – हनुमन्नाटक का अध्ययन करके श्रीराम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, भरत, सुग्रीव, हनुमान् इत्यादि पात्रों के माध्यम से श्री कविराज ने मृदुभाषी होने का संदेश दिया है। परशुराम जी के द्वारा क्रोधित होने पर भी श्रीराम कहते हैं–

बाहोर्बलं न विदितं न च कार्मुकस्य
त्रेयम्कस्य महिमा न तवापि सैषः।
तच्चापलं परशुराम! मम क्षमस्व
दिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम्।। (ह.ना. 1.39)

श्रीरामचन्द्र जी विनम्रतापूर्वक कहते हैं कि हे परशुराम जी! न तो मैं आपकी भुजाओं का बल जानता था और न शिवजी के धनुष की तथा आपकी महिमा को ही जानता था इसलिए मेरी उस धृष्टता को आप क्षमा कर दीजिए क्योंकि बालकों के अनुचित कार्य तो गुरूजनों की प्रसन्नता के कारण होते हैं।

3. वचन निभाने का संदेश – हनुमन्नाटकम् का अध्ययन करने पर पता चला कि व्यक्ति के वचन का क्या महत्त्व होता है। वर्तमान में देखें तो प्रायः व्यक्ति अपनी कही हुई बात पर नहीं रहते और बदल भी जाते हैं। प्रस्तुत नाटक में राजा दशरथ अपनी पत्नी कैकेयी को कब वचन दिया था और बहुत समय व्यतीत होने पर जब अवसर प्राप्त हुआ तो राजा दशरथ ने अपने वचन का पालन किया। यथा–

रामं कामाग्रजमिव वनं प्रस्थितं वीक्ष्य शक्तो
धर्तुं प्राणांछिव! शिव! कथं तान्विहायाऽथवाऽहम्।
निर्मुक्तः स्यां वचनमनृतं तत्पुनर्नाऽन्यथा मे
भूयाद्भूयस्तदनु वचनं 'हा! बभाषे तथे' ति। (ह. ना. 3.4)

अर्थात् कामदेव के बड़े भाई वसन्त के समान रमणीय राम को वन की ओर जाते देखकर शिव! शिव! मैं अपने प्राणों को कैसे रख सकुंगा? और प्राणों को न छोड़ा तो मैं झुठा हो जाऊंगा। नहीं नहीं मेरा प्राण असत्य न हो। तब खूब सोच विचार कर उन्होंने कहा– हाय! हाय! अच्छा कैकेयी! तथास्तु (जैसा तुमने कहा है उसे स्वीकार कर लेता हूं)

4. आज्ञाकारी पुत्र होने का संदेश – श्रीराम जी के लिए कैकेयी ने राजा दशरथ से वनवास मांगा। राजा दशरथ भी वचनों में बंधे हुए थे। राजा ने अपने वचन का पालन किया पुत्र को वनवास दे दिया। श्रीराम ने भी अपने पिता की आज्ञा (आदेश) का पालन किया और वन की ओर प्रस्थान किया।

यथा – राम भरतौ स्व स्वं कालमधिगम्य हर्स शौकौ नाटयन्तौ, गुरोर्गिरा जटावल्कलच्छत्र– चायरधारिणौ, वन प्रस्थान राज्यभिषेकारम्भाय राजानं दशरथं नमस्कर्तुमवतरतः।। (ह.ना. तृतीय अंक पृष्ठ सं. 38)

5. पतिपरायणता व स्त्रीधर्म का सन्देश – महानाटक का अध्ययन करने पर पता चलता है कि सीता ने श्रीरामचन्द्र जी को वन में जाते देखकर पिता के आदेश की पूर्ति के निमित जानकी सीता ने पहले कौशल्या के चरण कमलों को और बाद में सुमित्रा को प्रणाम कर अपनी सास की अनुमति ली। तोता, मैना, कोयल आदि चिड़ियों को नजरभर देखकर सीता अपने पति की अनुगामिनी हुई।

यथा– गुर्वाज्ञापरिपालनाय च वनं संप्रस्थितं राघवं
दृष्ट्वाऽसौ त्वरिता विदेहतनया श्वश्रूजनं पृच्छति।
नत्वा कोसलकन्यकांघ्रियुगलं पश्चात्सुमित्रां पुन–
दृष्ट्वा हां! शुकसारिका–पिककुलं रामानुगा प्रस्थिता।। (ह.ना. 3.11)

6. बड़े भाई के प्रति मान–सम्मान का सन्देश – भरत को जब पता चला कि माता कैकेयी ने भाई राम को वनवास दिलवा दिया तो भरत भी ऐसे भाई हुए पहले तो श्रीराम को मनाने वन में ही चले गये। श्रीराम जब भरत के कहने पर नहीं आते हैं तो भरत ने भी अयोध्या में रहना छोड़ दिया। भरत ने अयोध्या के पास ही नन्दि ग्राम में रहकर राजा का दायित्व निभाया।

यथा– रामे प्राप्ते वनान्तं कथमपि भरतश्चेतनां प्रप्य तातं
नीत्वा देवेन्द्रलोकं मुनिजन वचनाद्ध्वदेहक्रियाभिः।
भ्रातुः शोकाज्जटावानजिनवृतनुः पालयामास नन्दि
ग्रामे तिष्ठन्नयोध्यां रघुपतिपुनरागमिभोगाय वीरः।। (ह.ना. 3.12)

अर्थात् भरत ने पिता को स्वर्ग पहुंचाकर, भाई रामजी के शोक से जटा बांधे और मृगछाला ओढ़े, नन्दि ग्राम में रहते हुए रामजी के (वन से लौटकर) आने के बाद भोगने के लिए, अयोध्यापुरी का पालन किया। हनुमन्नाटकम् का अध्ययन करने पर असंख्य सन्देश प्राप्त होते हैं। परन्तु लघुशोध की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए सभी का यहां विस्तार से वर्णन करना असम्भव है। अतः कुछ बिन्दुओं के माध्यम से ही सन्देश देने का प्रयास किया गया है।

7. **सच्चरित्र का सन्देश।**
8. **बुराई का फल अच्छा नहीं होता।**
9. **सुग्रीव श्रीराम की अटूट मित्रता।**
10. **हनुमान् जैसा सच्चा भक्त होने का सन्देश।**
11. **पिता को निर्दोष होने का सन्देश।**
12. **सहनशीलता का सन्देश।**
13. **क्रोध पर नियन्त्रण का सन्देश।**
14. **सफल राजनीतिज्ञ होने का सन्देश।**
15. **सीता आदर्श साध्वी है।**
16. **प्रजा पालन का सन्देश।**
17. **विश्वास होने, रखने का सन्देश।**
18. **प्रलोभन में नहीं आने का सन्देश।**
19. **सच्चे गुरू होने का सन्देश।**
20. **ईश्वर के प्रति आस्था का सन्देश।**

(ख) उपसंहृति –

यह लघुशोध प्रबन्ध 'हनुमन्नाटकम् का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय पर लिखा गया है। लघुशोध में प्रस्तावना भाग तथा छः अध्याय व अन्त में परिशिष्ट रखा गया है।

प्रथम अध्याय में नाटककार के विषय में जनश्रुतियों एवं व्यक्तित्व तथा महानाटकों का शास्त्रीय स्वरूप रखा गया है।

द्वितीय अध्याय में आलोच्य महानाटक के कथानक का मूलस्वरूप अर्थात् रामायण में श्रीराम के जन्म से लेकर बैकुण्ड लोक तक की समग्र रामकथा को कवि के द्वारा नाटकीय रूप दिया गया है। रचनाकार की मौलिकता को प्रदर्शित किया गया है। अंकानुसार कथानक का सार वर्णित है।

तृतीय अध्याय में विभिन्न रसों का स्वरूप व समीक्षा का वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में पात्र योजना का वर्णन है। नाट्यशास्त्रीय मानदण्ड को ध्यान में रखते हुए प्रधान पात्र (श्रीराम) व सहायक पात्रों में सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, सुग्रीव, रावण, मन्दोदरी इत्यादि का चरित्र चित्रण किया गया है।

पंचम अध्याय में छन्द व अलंकार योजना को रखा गया है। महानाटक में कौन–कौन से छन्दों तथा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

षष्ठ अध्याय में महानाटक का सन्देश रखा गया है। कि महानाटक के माध्यम से पाठकों को क्या–क्या सन्देश प्राप्त होते हैं। जिनका संक्षेप में वर्णन भी किया गया है।

अन्त में सूक्ति संग्रह तथा सन्दर्भ ग्रन्थ सूची को रखा गया है, जिनमें नवीन तथा पुरातन सूक्तियों को दर्शाया गया है। जिन रचनाकारों की रचनाओं से सहायता ली गई है उन पुस्तकों को सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में दर्शाया गया है।

इस प्रकार 'हनुमन्नाटकम् महनाटक का समीक्षात्मक अध्ययन' नामक इस लघुशोध प्रबन्ध में कपिपुंगव श्री हनुमान् द्वारा रचित व श्री दामोदर मिश्र द्वारा संकलित हनुमन्नाटकम् का समीक्षात्मक दृष्टि से अध्ययन करके समाज में इसकी उपयोगिता को दिखाने का प्रयास किया गया है। 14 अंकों का यह महानाटक समीक्षात्मक दृष्टि से विश्वकोश कहा जा सकता है। इस महानाटक के प्रत्येक पक्ष का यथामति सूक्ष्म विवेचन करने का प्रयास किया गया है। चूंकि इस दृष्टि से हम लघुशोध–प्रबन्ध का संस्कृत के अध्येताओं, शोधकर्ताओं तथा लेखकों को इस क्षेत्र में

और अधिक कार्य करने की प्रेरणा मिल सकेगी। यह सोचकर लिखा गया यह लघुशोध–प्रबन्ध अपनी उपयोगिता थोड़ी भी करा सका तो मेरा यह लेखन कार्य सफल होगा।

इस लघुशोध–प्रबन्ध में महानाटकीय तत्त्वों का सम्यक दिग्दर्शन कराया गया है। उनका इस महानाटक के विभिन्न सन्दर्भों से पोषण भी किया गया है। महानाटकीय परम्परा के लेखकों के लिए सम्भवतः यह उपादेय रहेगा।

इस प्रकार अन्य अनेक प्रयोजनों को जिन्हें प्रारम्भ में बताया गया है इस अन्तिम अध्याय से पूर्व तक सम्पन्न कर दिया गया है।

परिशिष्ट

(क) सूक्ति संग्रह

1. महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम्।

   अनुवाद – क्या पृथ्वीतल वीरों से शून्य हो गयी?

2. हा सीते! किं भविष्यति।

   अनुवाद – हा सीते! अब तुम्हारी कौनसी गति होगी।

3. पृथ्वीं! स्थिरा भव।

   अनुवाद – अरी पृथ्वी तू हिलना नहीं।

4. स्वर्ण सुवर्ण दहने स्वदेहं चिक्षेप कान्ति तव दन्तपंक्तिम्।

   विलोक्य तूर्णं मणिबीजपूर्णं फलं विदीर्ण ननु दाडिमस्य।।

   अनुवाद – सुन्दर रंगवाले सोने ने तुम्हारी कान्ति देखकर अपनी देह को आग में झोंक दिया और निश्चय है कि तुम्हारी दन्तावली को देखकर मोती के तुल्य दानों से भरा हुआ अनार का फल फट गया।

5. हा! बभाषे तथेति।

   अनुवाद – हाय! हाय! अच्छा कैकेयी तथास्तु (जैसा तुमने कहा उसे स्वीकार कर लेता हूं)।

6. अवनि! तव सुतेयं पादविन्यासदेशे

   त्यज निजकठिनत्वं जानकी यात्यरण्यम्।

   अनुवाद – हे पृथ्वी! तू अपनी पुत्री के पैर रखने के स्थल पर कठोरता दूर कर दे क्योंकि यह जानकी जंगल में जा रही है।

7. रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि।

   उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः।।

   अनुवाद – राम के द्वारा भी मरना होगा और रावण के हाथ भी मरना है। तो जब दोनों के हाथ मरना ही है तब राम जी अच्छे किन्तु रावण अच्छा नहीं।

8. हा! ज्ञातं स जटायुरेप जरसा क्लिष्टो वधं वांछति।

   अनुवाद – ओ हो! जान लिया यह वह जटायु है जो बुढ़ापे से लाचार होकर मरना चाहता है।

9. अनिहतपितृशत्रुः किं सशल्यो हतोऽस्मि।

अनुवाद – बस एक ही बात कांटे की तरह चुभ रही है कि हाय! पिता इन्द्र के रिपु रावण के बिना मारे मैं क्यों मरा।

10. देव! रूद्रावतारोऽयं मारूतिः। रूद्रस्तुतिः क्रियताम्।

अनुवाद – हे महाराज! ये हनुमान् शंकर के अवतार हैं। अतः आप रूद्र भगवान् की स्तुति कीजिए।

11. आगच्छ मयि जीवति।

अनुवाद – मेरे जीते रहते तक तुम लौट आओ।

12. प्रयच्छ जीवाम्यतो राघव! मासमात्रम्।

अनुवाद – तुम जाओ और कहना कि हे रघुनाथ जी! अब से एक महीने तक मैं जीवित रहूंगी।

13. या विभूतिर्दशग्रीवे शिरख्छेदने शंकरात।

दर्शनादेव रामस्य सा विभूतिर्विभीषणे।।

अनुवाद – जो ऐश्वर्य रावण को अपने शिर को काटने से शंकर जी के द्वारा प्राप्त हुआ था वही (लंका का) वैभव रामजी के केवल दर्शन कर लेने से ही विभीषण को मिला।

14. लोकपाल! सरसा सीतां प्रयच्छाऽनघाम्।

अनुवाद – हे त्रिभुवन रक्षक रावण! आप पतिव्रता सीता को तुरन्त लौटा दीजिए।

15. हनुमति कृतप्रतिज्ञे दैवमदैवं, यमोऽप्ययमः।

अनुवाद – हनुमान् के प्रतिज्ञा करने पर – होनी अनहोनी एवं मृत्यु जीवन बन जाती है।

16. ईषन्मात्रमहं वेद्मि स्फुटं यो वेत्ति राघवः।

वेदना राघवेन्द्रय केवलं प्रणिनो वयम्

अनुवाद – हे पूज्य भ्राता! मैं जरा इस दर्द को जानता हूं और अच्छी तरह तो आप जानते होंगे! क्योंकि पीड़ा तो रामजी को होगी हम तो केवल घायल हुए।

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशक
आधारभूत ग्रन्थ–			
1	हनुमन्नाटकम्	कपिपुंगव हनुमान्	चौ. विद्याभवन प्र., वाराणसी
2	बालरामायणम्	महाकविराजशेखर	चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी
3	काव्यमीमांसा	महाकविराजशेखर	हंसा प्रकाशन, जयपुर
4	कर्पूरमंजरी	महाकविराजशेखर	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
5	बालभारत	महाकविराजशेखर	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
6	श्रीमद्वालमीकीय रामायण	वाल्मीकि	गीताप्रेस, गोरखपुर
सहायक गन्थ–			
7	विवेकानन्दविजयम्	डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर	Vivekananda Rock Memorial Committee, Madras (Chenai)-5
8	विवेकानन्दविजयम्	आचार्य भवानी शंकर शर्मा व डॉ. विक्रमजीत	हंसा प्रकाशन, जयपुर
9	विवेकानन्द विजयम् का नाट्यशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. मूलचन्द	हंसा प्रकाशन, जयपुर
10	अथर्ववेद	दयानन्द भाष्य	दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली
11	अग्निपुराण	वेदव्यास	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
12	अग्निपुराण	वेदव्यास	गुरूमण्डल प्र., कलकत्ता
13	अमरकोष	अमरसिंह	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
14	अमरकोष	(रामाश्रमी टीका) अमरसिह	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
15	अष्टाध्यायी	पाणिनी	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
16	अभिज्ञानशाकुन्तम्	कालिदास	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
17	अभिज्ञानशाकुन्तम्	कालिदास (व्या. राघवभट्ट)	निर्णयसागर, बम्बई
18	अभिज्ञानशाकुन्तम्	व्या.–डॉ. बाबूराम त्रिपाटी	महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा
19	अलंकारानुशीलन	डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा'	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
20	अलंकाशास्त्र की परम्परा	डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा'	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
21	अलंकारमंजरी	वेणीदत्त	मिथिला सं. वि., दरभंगा

22	अभिनव भारती	अविनव गुप्त	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
23	आ.सं. साहित्य का इतिहास	डॉ. हीरालाल शुक्ल	रचना प्रकाशन, इलाहाबाद
24	आधुनिक संस्कृत नाटक	डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी	सागर विश्वविद्यालय, सागर
25	आधुनिक संस्कृत नाटक	डॉ. रामजी उपाध्याय	सागर विश्वविद्यालय, सागर
26	आ.सं. साहित्य का इतिहास	डॉ. दयानन्द भार्गव	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
27	आधुनिक संस्कृति साहित्योतिहासः	डॉ. देवर्षि कलानाथ शास्त्री	जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर
28	ऋग्वेद	सायणभाष्य	निर्णयसागर, बम्बई
29	ऋग्वेद	सायणभाष्य	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
30	ऋग्वेद	दयानन्द भाष्य	दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली
31	काव्यमीमांसा	राजशेखर	चौ. विद्याभवन, वाराणसी
32	काव्यालंकारसूत्रवृत्ति	वामन (व्या.–डॉ. नगेन्द्र)	दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
33	काव्यप्रकाश	व्या.–आचार्य विश्वेश्वर	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
34	काव्यात्ममीमांसा	डॉ. जयमन्त मिश्र	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
35	काव्यादर्श	दण्डी	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
36	काव्यालंकार	रूद्रट	वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली
37	कालिदास के रूपकों का नाट्शास्त्रीय विवेचन	डॉ. भूरिया	ग्रन्थम् – रामबाग, कानपुर
38	कालिदास और उसकी काव्य कला	बागीश्वर विद्यालंकार	मोतीलाल बनारसीदास, कानपुर
39	काव्यानुशासन	हेमचन्द्र	महावीर जैन वि., बम्बई
40	काव्यदीपिका	व्या.–डॉ. रामनारायण झा	ज.सं. पुस्तकालय, जयपुर
41	काव्यदीपिका	व्या.–डॉ. श्रीकृष्ण ओझा	अ.प्र., चौड़ा रास्ता, जयपुर
42	कादम्बरी	बाणभट्ट	साहित्य भण्डार, मेरठ
43	छन्दोमंजरी	व्या. पं. परमेश्वरदीन पाण्डेय	चौ. कृष्णदास प्र., वाराणसी
44	छन्दोमंजरी	व्या.–डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
45	छन्दोमंजरी	व्या.–डॉ. बाबूराम त्रिपाठी	महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा
46	दशरूपक	धनंजय	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

47	दशरूपक (अवलोक टीका)	धनिक	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
48	दशरूपकतत्त्वदर्शनम्	डॉ. रामजी उपाध्याय	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
49	नाट्य शास्त्र	भरतमुनि	राष्ट्रीय सं. संस्थान, नई दिल्ली
50	नाट्य शास्त्र का इतिहास	डॉ. पारसनाथ द्विवेदी	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
51	नाट्य शास्त्र का इतिहास और नाट्य सिद्धान्त	डॉ. जयकुमार जैन	साहित्य भण्डार, मेरठ
52	नाट्यशास्त्र (1–7 अध्याय)	डॉ. रघुवंश	मो.ब., दिल्ली, पटना
53	नाट्यदर्पण	रामचन्द्र–गुणचन्द्र	साहित्य भण्डार, मेरठ
54	नाट्यदर्पण	रामचन्द्र–गुणचन्द्र	परिमल प्रकाशन, दिल्ली
55	नाटकलक्षणरत्नकोश	सागरनन्दी	चौखम्बा सं. सी., वाराणसी
56	नाट्यशास्त्र (1–3 भाग)	बाबूलाल शुक्ल	चौखम्बा सं.सं., वाराणसी
57	नाट्यशास्त्र (1–3 भाग)	पं. मधुसूदन शास्त्री	काशी हि.वि.वि., वाराणसी
58	प्रतिमा नाटक का नाट्शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. अनिल झा	हंसा प्रकाशन, जयपुर
59	पाणिनीयशिक्षा	पाणिनी	कलकत्ता (1138)
60	भावप्रकाशन	शारदातनय	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
61	भावप्रकाशन	शारदातनय	गायकवाड़ ओ.सी., बड़ौदा
62	भारतविजयनाटकम् – एक आलोचनात्मक दृष्टि	पं. मथुरा प्रसाद दीक्षित	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
63	भारतीय साहित्यशास्त्रकोष	डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा'	बि.हि. ग्रन्थ अकादमी, पटना
64	मनुस्मृति	कुलूकभट्ट	निर्णयसागर, बम्बई
65	मनुस्मृति	पं. श्री हरगोविन्द शास्त्री	चौखम्बा सं.सी., वाराणसी
66	मुद्राराक्षस	विशाखादत्त	साहित्य भण्डार, मेरठ
67	मेदिनीकोष	मेदिनी	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
68	मेघदूत	कालिदास	साहित्य भण्डार, मेरठ
69	मेरे भारत जागो	स्वामी विवेकानन्द	बेलुड़ मठ, पश्चिमी बंगाल
70	यजुर्वेद	दयानन्द भाष्य	दयानन्द सस्थान, नई दिल्ली

71	रसगंगाधर	पण्डितराज जगन्नाथ	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
72	रसमीमांसा	डॉ. नगेन्द्र	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
73	रसार्णवसुधाकर	शिङ्गभूपाल	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
74	वक्रोक्तिजीवितम्	कुन्तक	चौ. अमर भारती, वाराणसी
75	वृहत् हिन्दी कोश	कालिका प्रसाद, सहाय	ज्ञा.म. लिमिटेड, वाराणसी
76	वृत्तरत्नाकर	व्या.–आ. बलदेव उपाध्याय	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
77	वाचस्पत्यम्	तारानाथ भट्टाचार्य	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
78	वेणीसंहार नाटकम्	व्या.–डॉ. कृष्णकान्त त्रिपाठी	साहित्य भण्डार, मेरठ
79	वैदिक साहित्य का इतिहास	डॉ. पारसनाथ द्विवेदी	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
80	शब्दकल्पद्रुम	राजा राधाकान्तदेव बहादुर	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
81	शिकागोभाषणमाला	स्वामी विवेकानन्द	बेलुड़ मठ, पश्चिम बंगाल
82	श्रीस्वामिविवेकानन्दचरित–महाकाव्यम्	त्र्यम्बक भण्डारकर	चौखंभा सुरभारती प्रकाशसन, वाराणसी
83	संस्कृत के ऐतिहासिक	डॉ. श्याम शर्मा	देवनागर प्रकाशन, जयपुर
84	संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ. रामजी उपाध्याय	रामनारायणलाल वेणीमाधव, इलाहाबाद
85	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. बलदेव उपाध्याय	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
86	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. उमा शंकर 'ऋषि'	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
87	संस्कृत साहित्य का इतिहास	मैक्डोनल	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
88	सं. सा. का वृहद् इतिहास	डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा'	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
89	सं. सा. का वृहद् इतिहास	डॉ. बलदेव उपाध्याय	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
90	संस्कृत हिन्दी शब्दकोश	बी.एस. आप्टे	मो. बनारसीदास, दिल्ली
91	संस्कृत नाटक	ए.बी. कीथ	मो. बनारसीदास, दिल्ली
92	संस्कृत नाटक और नाटककार	रामअवध पाण्डेय व रविनाथ मिश्र	भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली

93	संस्कृत नाटकों में समाजस्वरूप	चित्रा शर्मा	मेहरचंद लक्ष्मणदास, दिल्ली
94	संसकृत नाट्य कला	डॉ. रामलखन	मो. बनारसीदास, पटना
95	संस्कृत नाटक समीक्षा	इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'	साहित्य निकेतन, कानपुर
96	संस्कृत साहित्य – बीसवीं शती	प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी	राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली–110058
97	संस्कृतसाहित्य–कोश	डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा'	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
98	संसकृत–वांगमय–कोश	डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर	भारतीय भाषा प., वाराणसी
99	संस्कृत–नाट्य–कोश	डॉ. रामसागर त्रिपाठी	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
100	संस्कृत–नाट्य–सिद्धान्त	डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी	चौ. सुरभारती प्र., वाराणसी
101	साहित्य दर्पण	व्या.–डॉ. लोकमणि दाहाल	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
102	साहित्य दर्पण	व्या.–डॉ. सत्यव्रत सिंह	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
103	सामवेद	दयानन्द भाष्य	दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली
104	सुवृत्ततिलक	क्षेमेन्द्र	निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई